चन्दामामा
फ़रवरी १९८८
2.50 RS

चन्दामामा

फ़रवरी 1988

★

विषय-सूची

★

एक प्रति : २-५०

वार्षिक चन्दा : ३०-००

चन्दामामा

संस्थापक : 'चक्रपाणी'
संचालक : नागिरेड्डी

अच्छा विद्यार्थी जल्दबाजी में आकर चाहे जिस गुरु के पास नहीं जाता, बल्कि गुरु की योग्यता का सम्यक् विचार कर फिर उसका शिष्य बन जाता है। गुरुओं के बारे में भी नीति लागू होती है। वे भी आनेवाले हर विद्यार्थी को अपना शिष्य नहीं बनाते, बल्कि उसकी योग्यता की परिक्षा भली भांति करते हैं। इस अंक में प्रकाशित "शिष्य की योग्यता" शीर्षक कहानी से हमें यही मालूम होता है।

अमर वाणी

अश्वः शस्त्रं शास्त्रं वीणा, वाणी नरश्च नारी च ।
पुरुष विशेषं प्राप्ता, भवन्ति योग्या अयोग्याश्च ॥

[घोड़ा, आयुध, शास्त्र, वीणा, वाणी इत्यादि का उपयोग तथा स्त्री-पुरुषों का प्रयोजन, उनका उपयोग करनेवाले व्यक्ति की योग्यता पर ही निर्भर करता है।]

वर्ष : ४० फरवरी १९८८ अंक : ६

एक प्रति : २-५० :: वार्षिक चन्दा : ३०-००

क्वालिटी और कीमत का पक्का हिसाब

चेक डिटर्जेन्ट टिकिया की भरोसेमन्द कीमत,
सुरक्षित धुलाई। चाहे रंगीन कपड़े हो या सफेद।

कीमत : १२५ ग्राम के २ रुपये (सब कर समेत)

खुद ही चेक कर लीजिये ना!

Shaw Wallace

शॉ वॉलेस का क्वालिटी उत्पादन।

ACIL/SWCPD/3-87/HIN R

'चन्दामामा' के संवाद

डूबे जहाज़ का ख़जाना

अपने समय का सब से बड़ा जहाज़ 'टिटानिक' अपनी पहली यात्रा पर चल पड़ा। १५ अप्रैल १९१२ की बड़ी सुबह २-२० बजे वह डूब गया। इस दुर्घटना में १५१३ व्यक्तियों को जल-समाधि मिली। इधर इधर कुछ लोगों ने सात हफ़्तों तक सागर के तल में उसकी ढूँढ़-ढाँढ़ की। उस डूबे जहाज़ से प्राप्त सैकडों वस्तुओं को ये लोग फ्रांस में ले आये।

गैंडे ज़िन्दाबाद

जिंबाबूवे की चार्ली हेवाट तथा जूली एड्वर्ड्स नामकी दो लड़कियाँ लंदन से हरारे तक साइकिल पर यात्रा कर रही हैं। उनकी इस यात्रा का उद्देश है दिन प्रति दिन समाप्त होती जानेवाली गैंडे जाति की सुरक्षा का प्रचार करना। नर्वे, स्वीडन डेन्मार्क, पश्चिम जर्मनी, नेदर्लेण्ड्स, फ्रांस, स्विट्ज़रलैंड, इटली, ईजिप्त आदि देशों की यात्रा करते हुए जो धन ये प्राप्त करेंगी, उसे गैंडों की रक्षा करने के लिए जिंबाबूवे के नैशनल कॉन्सर्वेशन ट्रस्ट को वे प्रदान करेंगी।
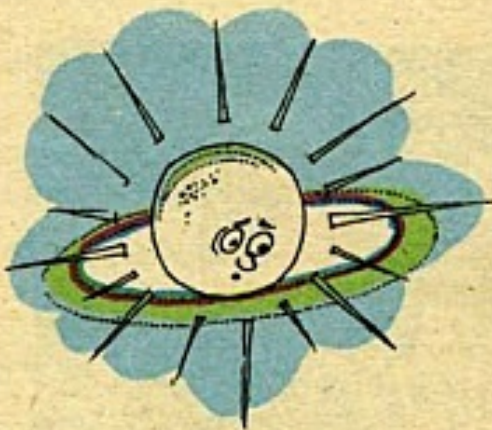
सूर्य के चतुर्दिक् रंगीन वृत्त

हाल ही में पता चला है कि सूर्य के चारों ओर लगभग दो घंटों तक इंद्रधनुष जैसा एक रंगीन वृत्त दिखाई देता है। प्रो. राम श्रीवास्तव ने सब से पहले इसका पता लगाया। ३०० वर्ष पूर्व कुछ ब्रिटिश वैज्ञानिकों ने अपने अनुसंधान द्वारा इसे सिद्ध किया था कि पृथ्वी से १५ कि. मि. दूरी पर व्याप्त मेघों में वर्तमान ओस बिन्दुओं से होकर गुज़रनेवाले सूर्यकिरण वक्र गति प्राप्त करते हैं और इस प्रकार रंगीन वृत्त निर्मित हो जाता है।

होशियार बच्चे

हाल ही में ब्रिटन में एक अनुसंधान हुआ। इससे मालूम हुआ कि इस पीढ़ी के बच्चे, उसी उमर के अपने दादा-दादियों से कहीं अधिक तेज़ और बुद्धिमान हैं। एक मानसशास्त्रवेत्ता ने दस साल की उम्रवाले एक हज़ार बालक-बालिकाओं की बुद्धिमत्ता का अनुसंधान कर यह तथ्य जान लिया।

कलावती

काशी के राजा की पुत्री का नाम था कलावती। वह अपूर्व सौंदर्यवती, गुणवती तथा परम भक्तिन थी। छोटी उम्र में ही दुर्वासा मुनि ने उसे पंचाक्षरी मंत्र का उपदेश दिया था। वह अत्यन्त श्रद्धा और भक्ति के साथ उस मंत्र का जाप करते हुए शिवजी की पूजा करती रही। जब वह उपवर हुई तब मथुरा के राजा दशार्ह ने उसके साथ विवाह किया।

शुरू में दशार्ह सुशील तथा सदाचारी था, परंतु बाद में अधिकार के अहंकार ने उसे विलासी बना दिया। अनेक पाप करने लगा। यह मालूम होने पर कलावती को बहुत दुख हुआ। सच्छील और पवित्र आचरण-वाली अपनी धर्म पत्नी की ओर स्वयं दशार्ह भी आँख उठाकर नहीं देख पा रहा था।

कलावती ने अपने पति को राह रास्ते पर लाने का निश्चय किया। एक दिन वह उसे अपने साथ महामुनि गर्ग के आश्रम ले गई और उन्हें सारा वृत्तान्त कह सुनाया। गर्ग मुनि ने राजा दशार्ह से अनुरोध किया कि वे पासवाली कालिन्दी नदी में स्नान करके लौट आयें। आश्रम के शान्तिपूर्ण वातावरण पर राजा मुग्ध हो गया। अपने विगत जीवन का स्मरण करते हुए पश्चात्ताप के साथ उसने भक्तिपूर्वक स्नान किया। उसी क्षण उसके सारे पाप कौए के रूप में उड़ गये। निर्मल हृदय लेकर दशार्ह नदी से बाहर निकला और जाकर मुनि के चरणों में गिर पड़ा। महामुनि गर्ग ने उसे मंत्रोपदेश दिया। उसके बाद दशार्ह राजधानी पहुँचकर रानी कलावती के साथ पवित्र जीवन बिताने लगा।

राजा और पंडित

चित्रगिरि राज्य के शासकों को एक विचित्र प्रथा का पालन करना पड़ता था। वह प्रथा इस प्रकार थी :- प्रत्येक दश वर्षों में वहां के राजा को समस्त क्षात्र विद्याओं की प्रतियोगिताओं में स्वयं भाग लेकर विजयी होना पड़ता था। इसप्रकार की प्रतिस्पर्धा में राजा के पराजित होने पर विजयी व्यक्ति चित्रगिरि राज्य का राजा घोषित हुआ करता था।

इस प्रथा के अनुसार चित्रगिरि राज्य पर दशवर्ष शासन करनेवाले राजा तथा जनता के बीच से प्रतियोगिता में भाग लेने आये तीन प्रतिभागियों के बीच स्पर्धा हुयी। राजा उन तीन वीरों में से दो को तो पराजित कर सके, किन्तु तीसरे वीर मुनीराम से पराजित हो गये। फलस्वरूप मुनीराम मुनींद्रवर्मा नाम से चित्रगिरि का राजा घोषित किये गये।

चित्रगिरि के राजदरबार में उद्दण्ड भट्ट नाम का एक प्रधान पंडित था। वह जितना महापंडित था उतना ही क्रोधी भी था। अन्य लोग चाहे जैसे भी महान क्यों न हों उद्दण्ड भट्ट उनके सामने नतमस्तक नहीं होता था।

मुनींद्रवर्मा ने पहली बार जब राजसभा आयोजित की तो उसदिन परंपरा के अनुसार उद्दण्ड पंडित ने राजा की स्तुति की, "राजन्, आप बल पराक्रम में बलराम के समान, साहस में अभिमन्यु तथा युद्धविद्याओं में अर्जुन के तुल्य हैं, इसी कारण से राज्य-लक्ष्मी ने आपका वरण किया है।"

राजा ने राजपंडित की स्तुति सुनी, पल दो पल उसकी ओर देख, तदुपरान्त वह खिल खिलाकर हँस पड़ा।

"राजन्, क्षमा करें, अपनी इस अकारण हँसी का प्रयोजन बताने की कृपा करें।" उद्दण्ड भट्ट ने विनम्रता पूर्वक निवेदन किया।

किशोर गोयनका

अवस्था से ही निष्ठापूर्वक मैंने गुरु की सेवा सुश्रूषा की। जंगल से फल, फूल एवं अन्य उपयोगी वस्तुएं लाकर उनकी सेवा में लगा रहता था। कभी कभी प्रताड़ना एवं मार भी खाने की नौबत आती थी। इसतरह मैंने धैर्य एवं तपस्यापूर्वक श्री नृसिंह शास्त्री के चरणों में बैठ कर सभी महान धार्मिक ग्रन्थों, यथा वेद, उपनिषद्, स्मृति, पुराण आदि ग्रन्थों का अध्ययन किया। तर्क, दर्शन आदि विद्याओं की कसौटी पर मेरी बुद्धि एवं मेधा को रगड़ रगड़ करके मुझे उन्होंने सभी तरह से निष्णात किया। इस तरह समस्त विद्याओं का बीस वर्षों पर्यन्त अध्ययन करने के पश्चात् गुरुकुल से बाहर निकलकर समयोचित अवसर पर अपनी विद्या एवं गुणों का प्रदर्शन करके चित्रगिरि राज्य के प्रधान पंडित का सम्मान प्राप्त कर मैं दरबारी पंडित बना।''

"अच्छी बात है। अवश्य बताऊँगा। लेकिन उसके पूर्व मैं आपके संबन्ध में थोड़ी जानकारी प्राप्त करना चाहता हूँ। दरबारी पंडित बनने के लिये आपने जो प्रयत्न किये उनका विवरण सभा के सम्मुख प्रस्तुत कर सकें तो बड़ी कृपा होगी"। राजा मुनींद्रवर्मा ने प्रतिप्रश्न किया।

उद्दण्ड भट्ट ने दरबारी पंडित नियुक्त होने के लिये जो प्रयत्न किये थे उनका विवरण इस प्रकार बताया, "राजन्, पंडित परिवार में मेरा जन्म हुआ है। मेरे पिताश्री, एक श्रेष्ठ विद्वान के रूप में विख्यात हैं। उन्होंने मुझे पंडितप्रवर श्री नृसिंह शास्त्री नाम के एक गुरु के पास विद्याभ्यास के लिये भेजा। वे एक महान मेधावी ही नहीं बल्कि बहुत बड़े ज्ञानी भी थे। मेरे गुरुकी दृष्टि में विश्व का सबसे महान व्यक्ति पंडित ही होता है। छोटी

उद्दण्ड भट्ट की सारी बातें सुनकर राजा मुनींद्र वर्मा ने कहा, "बीस साल तक अथक मेहनत करके पंडित बनने की जो कथा आपने मुझे सुनायी, इससे मेरे मन में आप के प्रति दया और हँसी के भाव पैदा हुए हैं। राजा बनने के लिये मैंने केवल तीन साल मेहनत की। आपने बीस साल की साधना। और इस समय आप मेरे सामने नतमस्तक होकर मेरी प्रशंसा पाने के लिये स्तुतिगान तथा विनय प्रदर्शन कर रहे हैं। क्या आप बता सकते हैं कि आपकी यह स्थिति हास्यास्पद नहीं तो और क्या है। यदि आप मेरा हाल सुनेंगे तो आश्चर्यचकित रह जायेंगे।"

इसके बाद मुनींद्र वर्मा ने अपनी कहानी इस प्रकार सुनायी, "मेरा जन्म एक रजक परिवार में हुआ है। अपनी छोटी उम्र से ही मैं अपने मातापिता के कार्यों में हाथ बँटाया करता था। किन्तु बचपन से ही मेरे मन में कोई दूसरा धन्धा सीखने की तीव्र इच्छा थी। उसी समय क्षात्र विद्याओं में प्रवीण एक मल्ल योद्धा युद्ध में सब को हराता हुआ मेरे गांव में पहुँचा। खड्ग विद्या में थोड़ीबहुत रुचि रखनेवाले मेरे गांव के मल्लों को उसने बुरी तरह परास्त किया। उस आगन्तुक मल्लयोद्धा की शक्ति एवं कुशलता से मैं बहुत प्रभावित हुआ। और उसका शिष्य बनकर उसकी संपूर्ण क्षात्रविद्या सीखकर उसी के समान मल्ल योद्ध बनने की नीयत से दूसरे दिन उससे मिला। मेरी लगन को भाँपकर उसने मुझे अपना शिष्य बना लिया। उसके साथ तीन वर्ष रहकर उससे मैंने सारी क्षात्र विद्याएँ सीख लीं। फलस्वरूप यहाँ की प्रतियोगिता में भाग लेकर तथा सफलता पाकर राजा बना।"

इस प्रकार राजा मुनींद्र वर्मा अपनी आप बीती सुनाकर रुका, फिर उसने कहा, "इतनी सरलतापूर्वक मैंने यह राज्य प्राप्त किया है। इस समय यह विशाल चित्रगिरि राज्य, यहां की विपुल सम्पत्ति, सैनिक और सेवक, सभी का मैं एकछत्र स्वामी हूँ। दीर्घकालीन वर्षों की कठोर साधना के बाद इस गौरवपूर्ण राजपंडित पद को पाकर भी आपको मेरे संकेतों और आदेशों पर जीना पड़ेगा। अब आपही बताइए कि राजा महान है या पंडित ?"
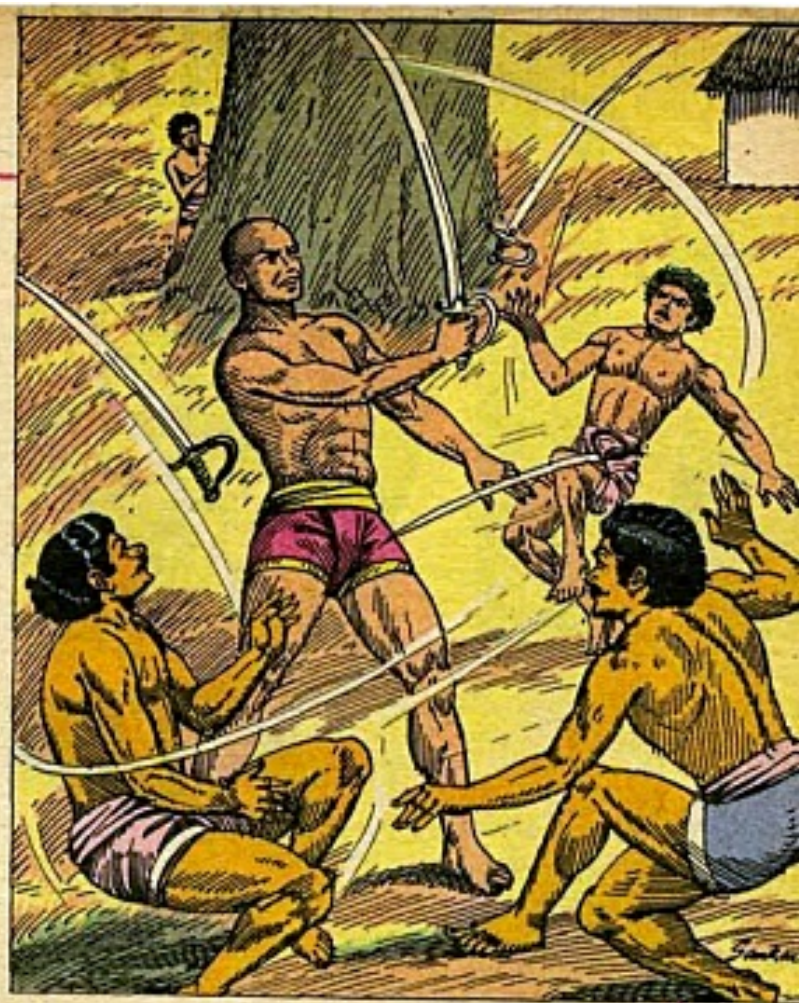
यह प्रश्न सुनकर उद्दण्ड भट्ट हँस पड़ा और बोला, "राजन्, पंडित ही वर्त्तमान, भूत और भविष्य का ज्ञाता होता है। तिथि, वार एवं नक्षत्रों द्वारा काल पर शासन हम लोग ही करते हैं। हमारी मेधा शक्ति असीम होती है। आयुकी वृध्दि के साथ मेधा या प्रज्ञा भी बढ़ती है। किन्तु आपने जिन क्षात्र विद्याओं का उल्लेख किया है, आयु वृध्दि केसाथ वे अनुपयोगी होती जाती हैं। राज्य का संचालन तो वीर ही करते हैं। यह राज्य तभीतक आपका होता है जबतक आप वीर बने होते हैं। इसके बाद वह दूसरों के हाथ में चला जाता है। पंडित लोग हाथ जोड़कर एवं नत मस्तक होकर जो विनय भाव प्रगट करते हैं, वह तो विद्या का एक उत्तम गुण है, वह केवल आप

लोगों का प्रेम और दया प्राप्त करने के लिए नहीं होता। अब आपही निर्णय कीजिए कि पंडित राजा से महान होता है या नहीं?"

इसपर मुनींद्र वर्मा ने कहा, "आपकी बातें मेरी समझ में नहीं आ रही हैं। मेरी समझ में महान से महान पंडित को भी वैभवशाली व्यक्ति के सामने हाथ जोड़कर खड़ा रहना पड़ता है। किन्तु सम्पन्न व्यक्ति को कभी एक पंडित के समक्ष नतमस्तक होने की ज़रूरत नहीं होती।"

उद्दण्ड भट्ट जोश में आकर बोला, "आप गलती कर रहे हैं, राजन! ऐसे अवसर भी अवश्य आते हैं जब पंडित राजा से हर हालत में बड़ा माना जाता है।"

"केवल बातें बनाने से किसी बात की सत्यता प्रमाणित नहीं होती। यदि आप ऐसा प्रमाणित कर सकें कि राजा से पंडित ही महान होता है, तो मैं आपको अपूर्व सम्मान देने के साथ ही स्वर्ण की थाली में आपके चरण पखारूँगा। और स्वर्ण एवं रत्नादिकों से आपको तौल दूंगा। उसके बाद आप को पालकी पर बिठाकर मैं खुद पालकी में कन्धा देकर अभूतपूर्व सम्मान के साथ राजमार्ग की सैर कराऊँगा। किन्तु यदि पंडित के पद को राजा से महान आप प्रमाणित नहीं कर सके तो चित्रगिरि के राज्य में पंडित का पद समाप्त कर दिया जायेगा। इस बात के लिये आपको तत्काल एक माह का समय दिया जाता है। मैं आज से आपको राजसभा से निकालने का आदेश देता हूँ।" राजा ने क्रोध से आज्ञा सुनायी।

उद्दण्ड भट्ट राज दरबार से निष्कासित होकर घर लौट आया। बहुत ऊहापोह के बाद भी उसकी समझ में यह न आया कि राजा से बढ़कर पंडित को महान कैसे सिध्द किया जाय। किन्तु यह साबित करना तो बहुत सहज है कि सामन्त पर राजा का, दुर्बल पर बलवान का, तथा निर्धन पर धनवान का प्रभाव कैसे होता है।

ऐसे ही मौके पर कलिंग देश से विमल वाचस्पति नाम का एक पंडित राजा मुनींद्रवर्मा के दरबार में आया और उनसे कहा, "महाराज, मैं आपके शत्रुदेश कलिंग से आया हूँ। मैंने बहुत देशों में जाकर उनके पंडितों से शास्त्रार्थ कर उन्हें पराजित किया है। आप अपने पंडितों से मेरा सामना करायें। यदि मैं हार गया तो ठीक है, अन्यथा हमारे राजा अपने अपार सैनिकों के साथ

आपके राज्य पर चढ़ाई कर देंगे। यह चेतावनी देने के लिये ही उन्होंने यह संदेश भी कहने की आज्ञा दी है कि यदि मैं आपके पंडितों द्वारा पराजित हो गया तो कलिंगदेश के पचास सीमावर्त्ती गांवों को आपके राज्य में मिला दिया जायेगा।"

राजा मुनींद्र वर्मा ने अपने दरबार के चार-पाँच पंडितों से विमल वाचस्पति के साथ शास्त्रार्थ कराया, किन्तु वे वाचस्पति की विद्वता के आगे नहीं टिक सके। इसके बाद राजा ने अपने मंत्रियों से विचार-विमर्श किया। सभी ने एक स्वर से राजा से निवेदन किया कि उद्दण्ड भट्ट को छोड़कर कोई दूसरा पंडित कलिंग के इस महापंडित को पराजित नहीं कर सकता।

राजा ने उद्दण्ड भट्ट को बुला भेजा। उसके उपस्थित होने पर उन्हें कलिंग देश के पंडित के साथ शास्त्रार्थ करने के लिये आदेश दिया। उन दोनों के वाग्युद्ध में उद्दण्ड भट्ट के अकाट्य तर्कों और अपने पक्ष को सिद्ध करने के प्रमाणों को सुनकर सभी सभासद एवं स्वयं राजा भी मंत्र मुग्ध होकर रह गये। कुछ ही क्षणों के पश्चात् कलिंग का पंडित उद्दण्ड भट्ट के हाथों चारों खाने चित्त हो गया। उसने विनम्रतापूर्वक अपनी पराजय स्वीकार कर ली।

राजा मुनींद्र वर्मा आनन्दविह्वल हो सिंहासन से उतरकर उद्दण्ड भट्ट के पास आये, उनका चरण स्वर्ण थाल में पखारकर स्वर्ण मणि रत्नादिकों का ढेर उनके चरणों में बिखेर दिया। इसके बाद भरी राजसभा में उन्होंने पंडित उद्दण्ड भट्ट से कहा, "पंडित श्रेष्ठ, मुझे इस बात का बहुत दुःख है कि मैंने अपनी अदूरदर्शिता, अज्ञान एवं अभिमानवश आपका अपमान किया है। वैभव, ऐश्वर्य, राजपद को सर्वोपरि मानकर मैंने ज्ञान एवं विद्वता की अवहेलना तथा अवमानना की है। किन्तु इस अनुभव ने मेरी आंखें खोल दी है।" इसके बाद उद्दण्ड भट्ट को पालकी पर चढ़ाकर कहारों के साथ राजा ने भी अपना कन्धा देकर नगर की वीथियों में घुमाया और इस तरह ज्ञान, विद्या एवं पांडित्य को राजा ने सर्वश्रेष्ठ स्थान दिया।

महान शिष्य

उज्जैन नगर के नज़दीक एक पर्वतीय क्षेत्र में महान पंडित श्री प्रज्ञासागर का आश्रम था आश्रम बहुत साफ़-सुथरा तथा शांतिपूर्ण था। प्रज्ञासागर वेद, वेदांग, उपनिषद एवं समस्त शास्त्रों के प्रकाण्ड विद्वान थे। विभिन्न विषयों पर शास्त्रीय चर्चा करने के लिये दूर दूर के विद्वान यहाँ आया करते थे।

उस समय प्रज्ञासागर का शिष्य बनकर समस्त विद्याओं का अध्ययन करने की इच्छा लेकर आनेवालों की भीड़ लगी रहती थी। इन लोगों को आश्रम के एक कोने में पथरीली ज़मीन दिखाकर प्रज्ञासागर अपनी शर्त्त सुना देते थे कि उनका शिष्य वही बन सकता है जो उस पथरीली ज़मीन में कुँआ खोद दे।

प्रज्ञासागर की इस शर्त्त का आशय किसी की समझ में नहीं आता था। अधिकांश प्रत्याशी पथरीली ज़मीन में कुँआ खोदने की शर्त्त को पागलपन समझकर वापस लौट गये। कुछेक थोड़ा प्रयास करके निराश हो लौट जाते थे। किसी ने रगड़ के साथ कुँआ खोदने का महत्प्रयास नहीं किया।

एक बार गांधार देश के एक गौरांग नामक पंडित को देशाटन करते समय प्रज्ञासागर की इस विचित्र शर्त्त का पता चला। उन्होंने अपने शिष्य विद्यानिधि के साथ प्रज्ञासागर के दर्शन करके उनसे निवेदन किया कि वे उन्हें अपना शिष्य बना लें। प्रज्ञासागर ने उन्हें अपनी शर्त्त बता दी कि इसके लिये उन्हें आश्रम की पथरीली ज़मीन में कुँआ खोद कर शिष्य बनने की अपनी योग्यता प्रदर्शित करनी पड़ेगी।

यह शर्त्त सुनकर गौरांग आश्चर्यचकित हो गया और कहा, "हे पंडितप्रवर ! मैंने तक्षशिला एवं नालन्दा में शास्त्रों का अध्ययन किया है। वहाँ पर थोड़े समय तक मैं आचार्य के पद पर भी

यमुना दत्त

रहा । मेरे शिष्य के चारों कोनों में पंडित के रूप में विशेष विख्यात हैं । फिर भी मैं आप जैसे महापंडित का शिष्य बनने का आकांक्षी हूँ । मैं समझता हूँ कि मेरी उपर्युक्त योग्यताएं आप का शिष्य बनने के लिए पर्याप्त हैं । आपका सच्छिष्य बनने का सौभाग्य मुझे मिला तो मैं कृतार्थ हो जाऊँगा । आप मेरी प्रार्थना स्वीकार करेंगे ?"

इसपर प्रज्ञासागर मुस्कुराये और अपनी बात दुहरायी कि उनका शिष्यत्व ग्रहण करने के लिए पथरीली ज़मीन में कुँआ खोदना एक अनिवार्य शर्त्त है ।

अपमानित होने का सा भाव प्रदर्शित करते हुए गौरांग ने कहा, "मुझे ऐसा लगता है कि आप डर करके अपना ज्ञान अपने शिष्यों को नहीं देते कि कहीं वे आपसे भी बढ़कर महापंडित नहीं बन जाएँ । आपकी इस कठिन शर्त्त को पूरा करना असंभव तो नहीं है, किन्तु आपका शिष्यत्व प्राप्त करने के लिए ऐसा कठिन कार्य मुझे प्रयोजनहीन लगता है । कृपया मुझे वापस जाने की अनुमति दीजिए ।"

विद्यानिधि जो अबतक अपने गुरु की बात चुपचाप सुन रहा था, बोला, "गुरुदेव, मेरी बात के अन्यथा न माने, मेरी समझ में आचार्य प्रज्ञासागर का उद्देश्य पथरीले प्रदेश में कुँआ खुदवाना मात्र नहीं होगा, प्रत्युत् मेरा दृढ़ मत है, ऐसी शर्त्त के पीछे कोई गूढ़ रहस्य छिपा हुआ है ।"

आचार्य गौरांग क्रोधित हो उठे, बोले, "ऐसी क्या बात है! मेरी समझ में नहीं आनेवाला वह रहस्य क्या है? थोड़ी गहराई में जाकर मुझे स्पष्ट करो ।"

"मेरा विचार है गुरुवर" विद्यानिधि ने स्पष्ट किया, "कि प्रज्ञासागर का, अपना शिष्य बनाने की इस कठिन शर्त्त का उद्देश्य, अपना शिष्यत्व प्राप्त करनेवाले प्रत्याशी की सहनशीलता, दृढ़ निश्चय, और उत्साह की परीक्षा लेना हो ।"

विद्यानिधि के द्वारा उपर्युक्त स्पष्टीकरण सुनकर आचार्य प्रज्ञासागर ने उसे अपने पास बुलाया और उसके सिरपर स्नेहपूर्वक हाथ फेरते हुए कहा, "वत्स, मैं समझ गया हूँ कि तुम पथरीली ज़मीन में कुँआ खोदे बिना भी कुँआ खोदने की सामर्थ्य रखते हो । मैं आजतक तुम्हारे जैसे जिज्ञासु, प्रखर बुद्धिमान शिष्य की प्रतीक्षा कर रहा था ।"

गौरांग चकित होकर प्रज्ञासागर को देखता ही रह गया। प्रज्ञासागर ने उससे कहा, "बहुत लोगों को यह भ्रम है कि मैं स्वार्थवश अपनी अर्जित ज्ञान-संपदा दूसरों को बाँटने में संकोच करता हूँ। किन्तु वस्तुतः आज तक के मेरे अनुवेषण का उद्देश्य मुझसे बढ़कर एक जिज्ञासू उत्तम पंडित पाने के लिये ही रहा है।"

"क्षमा कीजिए, मुझे भी आपके प्रति ऐसा ही भ्रम हो गया था।" गौरांग ने कहा।

आचार्य प्रज्ञासागर के चेहरे पर मुस्कुराहट फैल गयी। वे बोलते गये, "मेरा जो शिष्य होगा वह मेरी शिक्षा पाने के बाद मुखर होगा, मेरी विद्वत्ता का अवगाहन करेगा, अवश्यकता पड़ने पर मुझे तंग करेगा, मेरे संपूर्ण ज्ञान को अपनी मेधाशक्ति के फावड़े से खोद खोदकर बाहर निकालेगा। यही सोचकर अपना शिष्य बनने के लिये आये प्रत्याशियों से मैंने पथरीले क्षेत्र में कुँआ खोदने जैसी प्रतीकात्मक शर्त्त रखी। किन्तु उस शर्त्त के पीछे छिपे रहस्य को किसीने समझने की कोशिश नहीं की।"

"मेरे शिष्य विद्यानिधि ने आपके भाव को भली भांति परख लिया है, यह मुझसे भी अधिक प्रज्ञाशाली पंडित है।" गौरांग ने प्रसन्न होकर कहा।

आचार्य प्रज्ञासागर ने सिर हिलाते हुए कहा, "यह बात सर्वविदित है कि पत्थर की परतों में स्थित जलधारा को बाहर निकालने के लिये कितना कठोर परिश्रम करना पड़ता है। इसी प्रकार गुरु की मेधा में समाविष्ट अकूत ज्ञान-भंडार को पाने के लिये शिष्य को अथक प्रयास और घोर तपस्या करनी पड़ती है। ज्ञानबोध कराने वाले गुरु से बड़ा दायित्व उसे पानेवाले शिष्य की अपनी पात्रता एवं क्षमता में होता है, यही सब बताने के लिये मुझे ऐसा व्यवहार करना पड़ा।"

इसके बाद गौरांग चुपचाप आचार्य प्रज्ञासागर को अपने शिष्य विद्यानिधि को सौंपकर उनसे विदा लेकर चला गया। विद्यानिधि ने अनेक वर्षों तक आचार्य प्रज्ञासागर के चरणों में बैठ कर शिक्षा प्राप्त की और कालान्तर में गुरु से बढ़कर महान विद्वान और पंडित के रूप में यशस्वी हो गया।

३

[सुवर्ण प्रतिमा का अवलोकन करते ही राजा तथा राज्य के अधिकारी गण रूपवान व्यक्तियों में परिवर्त्तित हो गए। यह देखकर विनोद ने राजा से कहा—"आपके कर्मचारी व अधिकारी गण भी क्षण भर में ही कितने सुंदर दिखाई देने लगे। यह आश्चर्य की बात है न?"]

सुवर्ण प्रतिमा का अवलोकन करते ही राजा तथा राज्य के अधिकारी गण रूपवान व्यक्तियों में परिवर्त्तित हो गए। यह देखकर विनोद ने राजा से कहा—"आपके कर्मचारी व अधिकारी गण भी क्षण भर में ही कितने सुंदर दिखाई देने लगे। यह आश्चर्य की बात है न? देखिए महाराज, एक एक की सुंदरता देखते ही रहिये। ऐसे सुन्दर पुरुष इससे पहले कभी आपने देखे हैं? यह क्या चमत्कार है?"

राजा ने तीक्ष्ण दृष्टि से उसकी ओर देख कर कहा—"इस सुर्वण प्रतिमा के सजीव होते ही इस सुंदरी के साथ विवाह करने वाला व्यक्ति मैं ही हूँ। इनसे तो सुंदर पुरुषों के रूप में देखना व्यर्थ ही है।"

"मार्तण्ड महाराज! आप अपनी इच्छा के अनुरूप इस सुन्दरी से विवाह कीजिए। इस सौंदर्यवती से विवाह करने योग्य यहाँ आपको छोड़ और कौन हैं? आप ही उसके लिये सर्वथा

उचित वर हैं।" मंद मंद मुस्कराते हुए विनोद ने कहा ।

"अरे तुम भी कैसे भोले हो! तुमने किस कारण से इस प्रतिमा में प्राण प्रतिष्ठित करना चाहा था ? मुझसे विवाह करने के लिए ही न ?" राजा ने पूछा ।

विनोद ने कहा—"महाराज मैं अपने इस भोलेपन पर लज्जित हूँ ।"

राजा ने अट्टहास करते हुए कहा—"लज्जित होने के सिवा और कर ही क्या सकते हो? कुछ गुप्त व रहस्यपूर्ण बातें मुझ जैसे बुद्धिमान राजा के लिए समझना कोई असंभव बात नहीं है ।"

"महाराज मुझे संदेह है, आप शायद इतने महान व बुद्धिमान नहीं हैं। धृष्टता के लिये क्षमा कीजिये महाराज! आप अपने को जितना बुद्धिमान समझते हैं, वास्तव में आप उतने नहीं हैं।" विनोद ने कहा ।

"क्या कहा, मैं बुद्धिमान नहीं हूँ ?" इतना कह कर राजा अपनी मूंछों पर ताव देने लगे ।

थोड़ी देर मौन रहकर विनोद ने कहा—"महाराज, जब तक आप व आपके राज्य के अधिकारी गण उस प्रतिमा की रूप रेखाओं व सौंदर्य को देख आश्चर्य प्रकट करते रहे तब तक आप सब सचमुच बहुत सुन्दर दिख रहे थे। परन्तु उस प्रतिमा के अन्दर प्राण प्रतिष्ठा करने की बात होते ही जब घमंड में आकर आपने उस प्रतिमा के साथ विवाह करने का संकल्प किया उसी क्षण आप तथा आपके अधिकारी गण अपने पूर्ववत् विकृत रूप में बदल गए ।"

"तुम कितने अहंकारी हो। मुझे कुरूप बताते हो! मेरे सामने ऐसी बात करते हुए तुम को ज़रा भी भय नहीं? मेरे क्रोध का क्या परिणाम होगा देखना चाहते हो?" यह कहकर राजा ने क्रोध से मुट्ठी बांध ली ।

"क्या हम कुरूप हैं। ज़रा संभल के बात करो हमारी सुंदरता पर लांछन लगाने का परिणाम भी जानते हो? क्यों इस तरह प्रलाप कर रहे हो?" यह कहकर वे सब महाज्ञानी हुँकार उठे ।

बस, फिर वे सभी विनोद को पकड़ने के लिए उसकी ओर कूदे। पर विनोद उनकी पकड़ से बचकर चट्टानों पर कूदते-फाँदते एक जल प्रपात की ओर दौड़ पड़ा ।

राजा और उनके अधिकारी गण दो दो मिलकर एक दूसरे का हाथ पकड़े चट्टानों पर उछलते-कूदते उसका पीछा करने लगे। पर पहाड़ों पर दौड़ने का अभ्यास न होने से वे सब थोड़ी ही देर में थककर हाँफने लगे। साथ ही उनमें से कुछ के पाँव फिसल जाने की वजह से वे गिर कर घायल भी हो गए।

उसी बीच विनोद जलप्रपात के सामने जाकर खड़ा हो गया। राजा हाँफते व काँपते हुए चिल्ला उठा। "अरे कमबख़्त छोकरे! इस जल प्रपात में कूदने की धृष्टता न कर। ऐसा करना बहुत ख़तरनाक सिद्ध होगा, यह जान ले।"

"अजी महाराज चण्ड मार्तण्ड! मैं तो यह नहीं जानता कि यह प्रपात और इसके पीछे की गुफ़ा का प्रवेश और इसे पार करके उस पार के प्रदेश में जाना कितना ख़तरनाक है। पर यह बात मैं निश्चित रूप से जानता हूँ कि आपके राज्य में निवास करना इससे कहीं ज्यादा ख़तरनाक है।" यह कहकर विनोद जल प्रपात की ओर बढ़ता चला गया।

वे महाज्ञानी जन व राजा विस्मय से उसकी ओर ताकने लगे। विनोद जल प्रपात में कूदकर उच्च स्वर में चिल्लाया—"मैं जल प्रपात को पार करके उस पार जा रहा हूँ। अब आगे जो होगा देखा जाएगा। मैं डरपोक तो हूँ नहीं। विजयी होकर ही आऊँगा।"

राजा दोनों हाथों को उठाकर हिलाते हुए चिल्ला उठे—"अरे सुनो तो। उस जल प्रपात, को पार करके जाने वाला कोई भी व्यक्ति लौट कर आज तक नहीं आया। तुम भी अपनी ख़ैरियत चाहो तो यह साहस न करो। लौट आना। अगर आगे बढ़े तो तुम्हारा सर्वनाश निश्चय है। क्यों अपने को महासंकट में डालते हो? क्यों विनाश पर तुल गये हो? सावधान!"

विनोद ने कहा—"राजन्! हो सकता है कि उस पार जाने वाले शायद लौटना ही नहीं चाहते या उनमें वहाँ से वापस लौटने की सामर्थ्य ही न हो। किन्तु महाराज, मैं उस प्रतिमा के अन्दर प्राण का सचार कराने वाला उपाय जानकर ही लौटूँगा। लेकिन महाराज मेरे लौटने तक उस प्रतिमा की रक्षा का भार आप पर हैं। कोई उस प्रतिमा को छूने न पाए। आप पूर्णतः सतर्क रहिये। ज़रा भी

असावधान न रहिए महाराज !"

विनोद की ये बातें वहाँ की पहाड़ी गुफाओं और चारों ओर जंगलों में गूँज उठीं। राजा निश्चेष्ट हो पत्थर की मूर्ति की तरह खड़ा रह गया।

फिर कुछ क्षण पश्चात् वह चौंक उठा, मानों अचानक होश में आ गया हो। हाथ उठा कर बोला—"तुम चिंता न करो। मैं उस सुवर्ण प्रतिमा की खूब सावधानी से रक्षा करूँगा। यदि कोई उस प्रतिमा को छूने की कोशिश भी करेगा तो मैं उसका सिर धड़ से अलग करके दुर्ग के द्वार पर लटका दूँगा। तुम उस रहस्य का पता लगा कर शीघ्र लौटो। मैं तुम्हें अपने राज्य में ज़मीन का एक हिस्सा अवश्य दूँगा और साथ ही अपनी पुत्रियों में से एक के साथ जो रूप व सौंदर्य में मेरी बराबरी कर सकती है—उससे तुम्हारा विवाह भी करा दूँगा।"

किन्तु मालूम नहीं राजा की इतनी सारी बातें विनोद के कानों में पड़ी या नहीं। लेकिन विनोद उन भयंकर ध्वनियों के साथ ऊपर से नीचे की ओर वेग से गिरती जल प्रपात की धाराओं में साहस पूर्वक प्रवेश कर गया।

विनोद को स्वयं यह ज्ञात नहीं कि उस जल प्रपात को पार करने में उसे कितना समय लगा। परन्तु जैसे जैसे वह आगे बढ़ता गया वैसे वैसे उसे ऐसा प्रतीत होने लगा मानों वह वायुवेग से जल प्रपात को चीरते हुए आगे बढ़ा जा रहा है।

कुछ देर बाद विनोद जल प्रपात के उस पार पहुँच गया, वहाँ पहुँचकर चारों तरफ उसे पहाड़ों से भरी सोने की घाटी का साम्राज्य दिखाई दिया। उस प्रदेश में चारों ओर ऐसे सघन वृक्ष थे कि उनमें से सूर्य किरणें भी बड़ी कठिनाई से प्रवेश कर पातीं। विनोद को ज़रा घबराहट हुई ज़रूर। पर उसने अपने को सँभाला। साहस करके आगे बढ़ते रहा। उसमें एक नए उत्साह का संचार हुआ। क्योंकि उसे एक रहस्य का पता लगाना था। दूर एक पहाड़ी दिखाई दे रही थी। विनोद वहाँ तक पहुँच गया।

विनोद ने समीप की उस पहाड़ी पर चढ़ कर उस पार देखा। तो उसने वहाँ पाया कि एक विशाल मैदान को चारों ओर से एक नदी ने घेर रखा है।

"कौन हो तुम?" यह आवाज़ सुनते ही

विनोद ने पीछे मुड़कर देखा तो क्या देखता है कि पास की एक दूसरी पहाड़ी पर से एक कुबड़ा बूढ़ा उसी की ओर चला आ रहा है। उसकी दाढ़ी लम्बी और आँखें साँप की आँखों की तरह चमक रही थीं।

बूढ़े ने विनोद के समीप पहुँचते ही पूछा—"कौन हो तुम? यहाँ क्या कर रहे हो?"

"मेरा नाम विनोद है और, मैं यहाँ कुछ नहीं कर रहा। पर तुम तो बताओ कि तुम कौन हो?" विनोद ने कहा।

"तुम्हारे बोलने का ढंग मुझे बिल्कुल पसन्द नहीं। हाँ तुमने अभी पूछा कि मैं कौन हूँ तो सुनो, मैं इस ज्ञानभूमि का द्वार-रक्षक व पुजारी हूँ। लेकिन तुम यहाँ किसलिए आए हो और आगे क्या करना चाहते हो?" बूढ़े ने पूछा।

विनोद ने कहा—"मुझे तो बहुत दूर जाना है। लेकिन मुझे नहीं मालूम कि मैं जिस प्रदेश में जाना चाहता हूँ वह किस दिशा में है और वहाँ जाने के लिए कौन सा मार्ग है?"

"ओह! ऐसी बात है तो तुम इस नदी में उतरकर तैरकर उस पार पहुँच जाओ। फिर तुम अपनी इच्छानुसार कहीं भी जा सकते हो।" बूढ़े ने कहा।

बूढ़े से पिंड छुड़ाने के लिए विनोद उसी समय नदी में कूद पड़ा। नदी का जल समशीतोष्ण था। वह तैरते हुए नदी के उस पार पहुँच गया। किन्तु उसके आश्चर्य की सीमा नहीं थी क्योंकि यहाँ भी वही कुबड़ा बूढ़ा उसके सामने खड़ा था।

"मैंने तो तुम्हें नदी पार करते हुए नहीं देखा, फिर तुम यहाँ कैसे आ गए?" विनोद ने उससे पूछा।

"मैं वहाँ से अदृश्य होकर इस पार तुम्हारे सामने पहुँच गया।" कुबड़े बूढ़े ने उत्तर दिया।

"यह कैसे संभव है?" विनोद ने आश्चर्य से पूछा।

"क्यों नहीं? सच पूछा जाय तो हम सब, कुछ शक्तियों की तरंगें हैं। यदि हमें इनका समुचित ज्ञान हो तो हम जब चाहें तब उन, शक्ति-तरंगों के रूप में और फिर मनुष्य के रूप में अपने आप को रूपांतरित कर सकते हैं।" बूढ़े ने ज़वाब दिया।

"अच्छा, तो ऐसी बात है।" विनोद ने आश्चर्य

से पूछा ।

"मैंने तुम्हें पहले ही बता दिया है कि तुम अब ज्ञानभूमि में पहुँच चुके हो। फिर भी ज्ञान की यह शक्ति कुछ ही लोगों तक सीमित रहती है।" ऐसा कहते हुए वह बूढ़ा विनोद के क़रीब आने लगा ।

बूढ़े को अपने क़रीब आते देख विनोद कुछ पीछे हटने लगा। बूढ़े ने क्रोध से अपनी भौंहें सिकोड़ते हुए कहा—"तुम बहुत घमंड से मेरे साथ व्यवहार न करो। क्योंकि तुम अब किसी भी हालत में मुझसे बच नहीं सकते। यदि तुम इस ज्ञानभूमि के नागरिक बनना चाहो तो मुझे तुम्हारा स्पर्श करके तुम्हारा नामकरण करना होगा।"

"क्यों मेरा विनोद नाम तुम्हें अच्छा नहीं लगता ?" विनोद ने पूछा ।

"देखो, तुम्हारा नामकरण तो करना ही होगा। लेकिन मुझे आश्चर्य है कि यहाँ पहुँचने के बाद भी तुम्हें अपना नाम याद कैसे है।" बूढ़े ने क्रोधित और विस्मित होते हुए पूछा ।

"क्योंकि यह मेरा नाम है, इसलिए मुझे याद है।" विनोद ने कहा ।

"जब तुम नदी में उतरे तभी तुम्हें अपना पूर्व वृतान्त पूर्णतः भूल जाना चाहिए था। किन्तु ऐसा नहीं हुआ। इसलिए तुम अब यहाँ के नागरिक नहीं बन सकते।" बूढ़े ने कहा ।

"मैं तुम्हारी इस ज्ञानभूमि का नागरिक बनने का अभिलाषी नहीं हूँ। मैं तो केवल इस राह से गुज़रनेवाला एक राही हूँ।" यह कहकर विनोद आगे बढ़ा ।

"तुम अपने घमंड में चूर हो। लेकिन तुम ज्ञानभूमि के नागरिक बनने के महत्व को नहीं समझते। मैं बराबर कितने समय से नाना परदेशियों को इस ज्ञानभूमि के नागरिकों में बदलता आ रहा हूँ। पर मुझे तुम पर और इस बात पर आश्चर्य है कि नदी में तैरने के बाद भी तुम अपने अतीत को नहीं भूल पाए। क्या तुम एक बार और नदी में तैरकर आ सकते हो?" बूढ़े ने पूछा ।

"यह नहीं हो सकता।" यह कहकर विनोद ने एक बार अपनी उँगली की अँगूठी की ओर देखा और यह समझ लिया कि सुवर्ण प्रतिमा से

अपनी उंगली में आई इस अंगूठी के प्रभाव से ही यह उस ख़तरनाक नदी के ख़तरे से बच सका है।

कुबड़े बूढ़े ने क्रोधित होकर तालियाँ बजाईं। तालियों की थपथपाहट से पहाड़ों में विचित्र प्रतिध्वनियाँ गूँज उठीं। और धीरे धीरे उन प्रतिध्वनियों का नाद घटने के बजाय बढ़ता ही गया।

"ऐसी विचित्र प्रतिध्वनियाँ तो मैंने कभी नहीं सुनीं। यह तो एक बड़ा मज़ेदार तमाशा है।" विनोद ने कहा।

"बेटा यह मज़ेदार तमाशा नहीं है। हमने वैज्ञानिक दृष्टि से कुछ विजयें प्राप्त की हैं। यह प्रतिध्वनियाँ बढ़ाने वाली विजय उन्हीं में से एक है।" कुबड़े ने कहा।

इतने में पहाड़ियों के पीछे से कुछ सैनिक उसकी ओर आने लगे।

"बन्दी बना लो इस परदेशी छोकरे को।" कुबड़े ने आज्ञा दी।

सैनिकों ने विनोद को घेर लिया। पर विनोद सैनिकों के उस पार स्थित एक चट्टान पर कूद निकला और उनकी पकड़ से बच कर भागने लगा। सैनिक फिर भी हताश नहीं हुए। वे उसका पीछा करने लगे। आख़िरकार वह भाग कर एक घाटी-प्रदेश में पहुँचा। घाटी के छोर पर उसे एक विशाल भवन और कुछ मकान दिखाई पड़े। विनोद तेज़ी से दौड़कर इस आशा से वहाँ पहुँचा कि शायद वह उन सैनिकों के चंगुल से बच निकले। लेकिन वे सैनिक उससे भी तेज़ गति से उसके पास पहुँच गए।

अंत में विनोद ने पाया कि उसके सामने अब सैनिकों द्वारा बन्दी बनाए जाने के सिवा और कोई चारा नहीं है। किन्तु उसी क्षण उसने देखा, वे सैनिक अब उसका पीछा किए बिना वहीं खड़े होकर समीप की एक पहाड़ी की ओर काँपते हुए देख रहे थे।

विनोद ने भी उस पहाड़ी की ओर देखा और उस दृश्य को देख कर वह एकदम आश्चर्यचकित रह गया। (सशेष—क्रमशः)

स्वामी द्रोही मित्र द्रोही

दृढ़व्रती विक्रमार्क पेड़ के पास लौट आये, पेड़ पर से शव को उतारा, कन्धे पर डाल कर सदा की भांति मौन श्मशान की ओर चलने लगे। तब शव में वास करनेवाले बेताल ने कहा, "राजन्, अर्धरात्रि के समय सियार, उल्लू तथा भूतप्रेतों का जिस श्मशान में आवागमन होता है, वहां पर आप जो मेहनत कर रहे हैं, उसे देख कर मुझे आप पर दया आ रही है। इस विशाल विश्व में स्वामीद्रोही और मित्रद्रोहियों की कोई कमी नहीं है। मुझे संदेह है कि कहीं आप भी ऐसे लोगों के हाथों का खिलौना बनकर तो ऐसा कष्ट नहीं उठा रहे हैं। ऐसे द्रोहियों के धोखे का परिचय देने के लिये मैं एक स्वामीद्रोही और मित्रद्रोही की कथा सुनाता हूँ। यह कथा बड़ी रोचक और रंजक है। ध्यान देकर सुनिये। श्रम को भूलाने में इससे मदद मिलेगी।"

बेताल कहानी सुनाने लगा :

स्वर्णमुखी राज्य पर राजा धर्मपाल का शासन
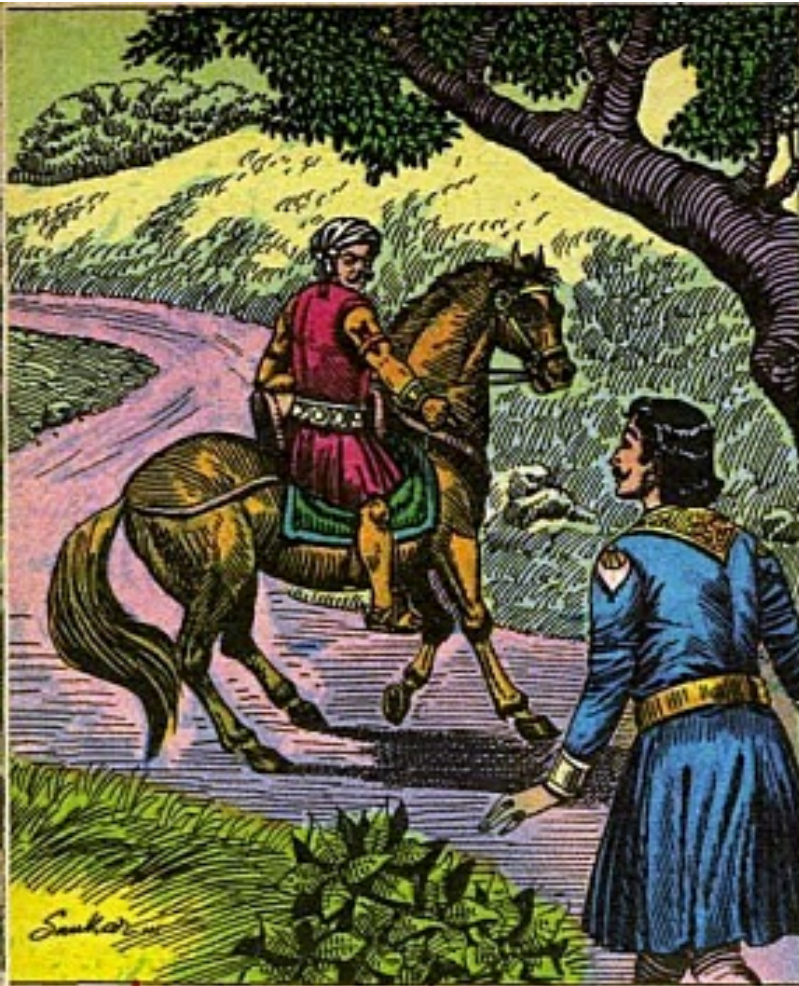
था। वे एक महान वीर के रूप में विख्यात थे। उनकी वीरता की कथाएँ प्रजाजन खूब जानते थे और उन्हें शौक से सुनते-सुनाते थे। उनका सेनापति नागभैरव गोमुख व्याघ्र जैसा कपटी था। छल करने में उसका जोड़ नहीं था। राजा के प्रति अत्यन्त श्रद्धाभक्ति का प्रदर्शन करता हुआ भीतर ही भीतर वह राजसिंहासन पर अधिकार जमाने का षड्यंत्र रचने लगा था।

राजा धर्मपाल अपने सेनापति के इस स्वामीद्रोह विषयक षडयंत्र से बिलकुल बेखबर थे। नागभैरव ने मौका पाकर राज्य के कुछ उच्च अधिकारियों को धन का प्रलोभन देकर अपने वश में कर लिया और राजा, रानी, तथा युवराज शशिसेन को बन्दी बना बन्दीगृह में कड़े पहरों में रखकर तब निश्चिंततापूर्वक गद्दी संभाली। राज-परिवार के लोगों को बाहर आने की अनुमति न थी। उन तक कोई जा न सकता था।

परन्तु राजा जिस कारागार में बन्दी थे उसमें एक गुप्त सुरंग मार्ग था जिसका पता नागभैरव को नहीं था। राजा उस सुरंग के रास्ते से बाहर निकल कर एक जंगल में पहुँचे।

राजा जब जंगल के बीचोंबीच चल रहे थे उसी वक्त शिखमुखी नामक एक डाकू घोड़े पर आ धमका और राजा को रोककर कड़ककर कहा, "तुम अपने शरीर पर धारण किये आभूषण निकाल कर मुझे सौंप दो। अगर भागने की कोशिश की तो लेने के देने पड़ेंगे। खबरदार।"

धर्मपाल ने बिना विरोध किये चुपचाप अपने सम्पूर्ण आभूषण निकाल एक कपड़े में बांधे और फिर मृदुमुस्कान के साथ उसे शिखमुखी को सौंप कर जाने को उद्यत हुए।

इसपर शिखमुखी ने उन्हें रोकते हुए पूछा, "देखने में तुम बड़े कुलीन मालूम पड़ते हो। शारीरिक बल से भी तुम मेरा सामना करने की सामर्थ्य रखते हो। फिर भी तुमने बिना प्रतिरोध किये चुपचाप मुझे सारे आभूषण सौंप दिये। तुम कौन हो? तुम कोई मामूली आदमी नहीं लगते। कहाँ जा रहे हो? क्या काम करते हो? सब सच सच बता दो।"

धर्मपाल ने उत्तर दिया, "मेरा नाम धर्मपाल है। मैं स्वर्णमुखी राज्य का राजा हूँ।" फिर राजा ने अपने सेनापति द्वारा किये गये स्वामीद्रोह की

पूरी कथा सुनाकर कहा, "तुमने आमने सामने आकर मुझे डराया, मुझे लूटना चाहा, उसने विश्वासघात करके पीठ पीछे से मेरे साथ द्रोह किया, इसलिए मुझे ऐसा लगा है कि तुम इस स्वामीद्रोही से लाख दर्जे अच्छे हो। इसीलिए प्रतिरोध की सामर्थ्य रखते हुए भी मैंने अपने सारे आभूषण तुम्हें सौंप दिये है। मुझे आशा है, मेरे इतने निवेदन से तुमको संतोष होगा।"

राजा के ये शब्द सुनते ही शिखमुखी घोड़े से उतरकर आभूषणों की गठरी उनके चरणों पर रख कर श्रद्धावनत होकर बोला, "महाराज, मुझे क्षमा करें। और आदेश दें ताकि मैं अपने पच्चीस दुर्द्धर्ष, साहसी लुटेरों के साथ जो धनुर्विद्या में भी बेजोड़ हैं, उस धोखेबाज नागभैरव का काम तमाम कर दूँ। मैं आपकी कुछ सहायता कर सका तो अपने आपको धन्य समझूँगा। मुझे अवसर दीजिये।"

"तुम्हारे इस मदद के प्रस्ताव के लिए मैं एहसानमंद हूँ। आवश्यकता पड़ने पर तुम्हारे पास आऊँगा। तुम तैयार रहना।" यह कहते हुए धर्मपाल आगे चल पड़े।

राजा थोड़ी दूर और आगे बढ़े। अग्निमित्र नामका एक राक्षस किसी पेड़ से सटकर बैठा था। सामने बैठे एक दाढ़वाले सूअर को वह खाने जा रहा था, और सूअर ज़ोर से चीख-चिल्ला रहा था। यह दृश्य अत्यन्त करुणाजनक था।

उस दृश्य को देखकर राजा दूसरी ओर मुँह घुमाकर आगे बढ़ने लगा। इसे भाँपकर राक्षस बोल उठा—"अरे मानव, मुझे देखकर भी

निर्भय आगे जा रहे हो ?" राक्षस उठ खड़ा हुआ और उसने राजा को अपने बायें हाथ में कसकर पकड़ लिया ।

राजा धर्मपाल ज़रा भी विचलित न हुए। इस पर राक्षस ने अचरज-विभोर हो पूछा—"जिसको प्राणों का भय नहीं, ऐसे मानव को आज मैं पहली बार देख रहा हूँ। बता दो, तुम कौन हो? कहाँ से आ रहे हो?"

"मैं स्वर्णमुखी का राजा हूँ। मेरा नाम है धर्मपाल।" कहकर राजा ने अपना सारा वृत्तान्त राक्षस को सुनाया। और कहा—"राजा को कभी अपने प्राणों का भय नहीं होना चाहिए।"

राक्षस ने राजा को ज़मीन पर उतार दिया और कहा—"एक सच्चे राजा के सभी लक्षण तुम में विद्यमान हैं। मैं तुम्हारे साथ राजधानी आकर उस राजद्रोही सेनापति को मार डालूँगा।"

"ज़रूरत पड़ने पर मैं अवश्य ही तुम्हारी सहायता माँग लूँगा। तुमने मेरी सहायता करने का आश्वासन दिया इसका मुझे संतोष है। समय आने पर मित्र व शत्रु का पता चलता है।" यों कह राजा धर्मपाल आगे बढ़े।

एक सप्ताह भर यात्रा करने के उपरान्त धर्मपाल पड़ोसी राज्य वैशाली में पहुँच गये। स्वर्णमुखी और वैशाली राज्यों के बीच पीढ़ियों से शत्रुता चली आ रही थी।

फिर भी धर्मपाल वैशाली के राजा सुचरित से मिले और उनको सारा वृत्तान्त कह सुनाया। धर्मपाल ने पूछा—"अपने सिंहासन पर पुनः अधिकार प्राप्त करने में आप मेरी सहायता करेंगे? मैं आप पर दबाव डालना नहीं चाहता, आपको जो उचित लगे वही कीजिये।"

इस पर सुचरित ने उत्तर दिया—"राजा धर्मपाल, आप भले ही जन्म भर मेरे शत्रु रहे हों, मैं मानता हूँ - संकट काल में आपकी सहायता करना मेरा धर्म है। मैं अपनी समूची सेना के साथ आपकी सहायता करने चलूँगा।"

एक विशाल सेना के साथ जाकर धर्मपाल ने स्वर्णमुखी नगरी को घेर लिया। नागभैरव और धर्मपाल के बीच घमासान लड़ाई हुई। घायल होकर नागभैरव हार गया और धर्मपाल के द्वारा कारागार में बन्दी बनाया गया। रानी और राजकुमार को कारागार से मुक्त किया गया।

सिंहासन पर बैठते ही जंगल में लूट-पाट मचानेवाले डाकू शिखिमुखी को बुलाया और कहा—"तुम राहगीरों को लूटकर हमारी प्रजा को परेशान कर रहे हो। जंगल में घूमते-फिरते उनकी जान हमेशा ख़तरे में होती है। इसलिये तुम अपने सेवकों के साथ शीघ्र ही आत्म-समर्पण कर दो। वरना नतीजा अच्छा नहीं होगा। तुम्हें दण्ड भुगतना पड़ेगा। आज तक प्रजा तुम्हारे अत्याचारों से बहुत पीड़ित रही। आगे मैं ऐसा नहीं होने दूँगा। मुझे अपने कर्तव्य का पालन करना चाहिये।"

राजा की बातें सुनकर शिखिमुखी कुछ कहनेहीवाला था कि राजा ने कठोर स्वर में आदेश दिया—"तुम अभी इसी समय अरण्य में जाओ, और अपने सेवकों के साथ लौटकर आत्म-समर्पण करो। यही मेरी आज्ञा है।"

इसके बाद धर्मपाल स्वयं अरण्य में गये, और राक्षस अग्निनेत्र से मिलकर कहा—"अग्निनेत्र, तुम इस जंगल में रहते हो, इसलिये लोग यहाँ आनेसे डरते हैं। तुम इस प्रदेश को छोड़कर कहीं और चले जाओ।"

राक्षस अग्निनेत्र ने आँखें लाल-पीली करके उलटा सवाल किया—"राजन्, अगर मैं जंगल छोड़कर न जाऊँ तो?"

धर्मपाल ने तुरन्त म्यान से तलवार खींच ली। यह देख राक्षस ने प्रशंसा के साथ सिर हिलाया, फिर पीछे मुड़कर वहाँ से चला गया।

कुछ दिन बाद धर्मपाल ने वैशाली के राजा सुचरित पर युद्ध की घोषणा की और राजकुमार शशिसेन के नेतृत्व में सेना भेज दी। शशिसेन ने सुचरित को बड़ी आसानी से हराया और उसको बन्दी बनाकर के आया। शशिसेन ने सिंहासन पर बैठे अपने पिता के सामने उसे पेश किया।

बड़ी व्यथा के साथ सुचरित ने पूछा—"महाराज, लगता है, हमारे राज्यों के बीच बरसों से चली आ रही शत्रुता को शायद आप भूल नहीं पाये हैं।"

इसपर धर्मपाल ने हँसकर कहा—"शत्रुता को मित्रता में बदल देना आपके हाथ की बात है। अपनी इकलौती बेटी नीहारिका का विवाह मेरे पुत्र शशिसेन के साथ कर सकते हैं? नीहारिका बड़ी सुशील रूपवती कुमारी है। मेरा पुत्र शशिसेन

सर्वथा उसके योग्य है। मेरे इस प्रस्ताव को आप मान सकते हैं?"

सुचरित थोड़ी देर चुप रहा, फिर स्वीकृति के रूप में उसने अपना सिर हिलाया। सुचरित की हथकड़ियाँ खोलने की धर्मपाल ने अपने सैनिकों को आज्ञा दी।

बेताल ने यह कहानी सुना दी और फिर पूछा—"राजन्, राज्य के लालच में पड़कर सेनापति नागैभरव ने अपने ही प्रभु महाराजा को कारागार में बन्दी बनाया, यह स्वामी-द्रोह ही है। पर राजा धर्मपाल की बात क्या है? अपने राज्य को खोकर जब वे संकट में फँसे थे, अपनी सहायता करनेवाले डाकू व राक्षस के साथ ही अपनी सहायता के साथ जाकर नागभैरव को सिंहासन से उतारा। क्या राजा सुचरित के साथ यह मित्र-द्रोह नहीं? यदि नागभैरव स्वामी-द्रोही है, तो क्या धर्मपाल मित्र-द्रोही नहीं है? समझकर भी अगर इस संदेह का समाधान आपने नहीं किया तो आपका सिर फटकर उसके टुकडे-टुकडे हो जाएँगे।"

विक्रमार्क ने उत्तर में कहा—"जिस स्थिति में डाकू, राक्षस तथा सुचरित से धर्मपाल मिले, उस समय वे साधारण नागरिक थे, किसी राज्य के राजा नहीं थे। जब वे राजा बन गये तब अपनी प्रजा की चोर-डाकूओं से सुरक्षा करनेकी ज़िम्मेदारी उन पर आ पड़ी। इसलिये उन्होंने डाकू को आत्म-समर्पण करनेकी आज्ञा की। राक्षस के प्रति भी यही राजनीति लागू होती है। इसमें मित्र-द्रोह का कोई सवाल नहीं उठता। अब प्रश्न रहता है—धर्मपाल ने राजा सुचरित से सैनिक सहायता प्राप्त कर अपने राज्य को दुबारा जीत लिया, इस लिए लोग उनको असमर्थ व कायर समझ सकते हैं। इस अपयश से अपने को बचाने के लिए धर्मपाल ने सुचरित को पराजित कर अपने पराक्रम का परिचय दिया। यह भी राजनीति का ही एक अंश माना जा सकता है। इसमें मित्र-द्रोह का सवाल नहीं उठता।"

इस प्रकार राजा के चुप होते ही बेताल शव के साथ आँखों से ओझल हो गया और वृक्ष पर जा बैठा। (कल्पित)

सास और बहू

किसी गांव में अधेड़ उम्र की शांताबाई नामकी एक औरत रहती थी। उसके एक पुत्र था जो जवान हो चुका था। समय पाकर उस युवक की एक सुन्दर कन्या से शादी हुयी और बहू भी घर में आ गयी।

उसकी बहू बहुत ही ओछे विचार की औरत थी। उसने एक कहावत कहीं से सुन रखी थी कि जिस बहू को सास नहीं होती वह उत्तम नारी होती है। उसने सोचा कि यदि उसकी सास मर जाती है तो वह अपने पति के साथ निष्कंटक दिन बितायेगी और सबलोग उसे अच्छी बहू कहेंगे।

इस विचार से एक दिन उसने बड़े भोलेपन से अपनी सास से कहा, "अम्मा, अब मैं घर में आ गयी हूँ, यह गृहस्थी मैं चलाऊँगी, अब तुम भगवान के यहाँ चली जाओ।"

शांताबाई यह सुनकर चौंक गयी। थोड़ा सोचा और प्यार जताते हुए बोली, "अगर तुम्हारी यही इच्छा है तो मैं ज़रूर मर जाऊँगी। किन्तु मेरे मन में एक बड़ी इच्छा है कि मुझे एक पोता खेलाने का सौभाग्य प्राप्त हो जिसे देखकर मैं खुशी खुशी आंखें मूंद लूंगी।"

शांताबाई की बहू यह सुनकर बहुत खुश हुयी। कुछ दिनों के बाद उसने एक पुत्र को जन्म दिया।

शांताबाई अपने पोते को गोद में लेकर प्यार से, पुचकारा और खुशी के मारे फूल गयी।

बहू ने सास को लक्ष्य कर अपना पुराना प्रश्न दुहरा दिया, "अब तो आपने पोते को देख लिया, अब भगवान के यहाँ जाने में आपको क्या देरी है ?"

"अरी थोड़ा और सब्र करो, पोते की बालक्रीड़ाएँ अभी देखी कहाँ है, उसके मुंडन संस्कार और अक्षराभ्यास की रस्म पूरी होने पर भगवान को ज़रूर प्यारा हो जाऊँगी।" सास ने

(२५ वर्ष पूर्व चन्दामामा में प्रकाशित कहानी)

फिर बहू को भरमाया ।

समय बीतते क्या देर लगती है? पांच वर्षों के बाद पोते का मुंडन संस्कार और अक्षराभ्यास का संस्कार पूरा हो गया ।

बहू ने फिर टोका, "मां जी, अब तो आपने पोते का मुंडन और अक्षराभ्यास संस्कार देख लिया है, अब मरने में किस बात की आनाकानी है?"

"अरी पगली, जरा पोते का उपनयन संस्कार और विवाह तो देख लेने दे। उसके बाद मैं शांति से आंखें बंद कर लूँगी।" सास ने फिर बहु को पुचकारा ।

समय पाकर पोता जंवान हुआ, और एक अच्छे कुलीन घर में धूम धाम से उसका विवाह सम्पन्न हुआ। पुत्रवधू तोता मैना की तरह आनन्द पूर्वक गृहस्थी चलाने लगी, जिसे देख कर सारा परिवार खुशी के आलम में झूम उठा ।

अब शांताबाई की बारी आ गयी । उसने अपनी बहू से कहा, "अरी सुनो, अब मेरी सम्पूर्ण इच्छाएं पूरी हो गयी हैं, अब मैं मरना चाहती हूँ। देखो बहुरानी, अब तुम्हारी बहु भी घर-गृहस्थी चलाने के लिये आ गयी है । अब तुम्हारी भी ज़रूरत क्या रह गयी है। इसलिये अब हम दोनों एक साथ मरेंगी । चलो जल्दी करो ।"

यह सुनकर शांताबाई की बहू का कलेजा थर्रा गया। वह सोचने लगी कि वह उलझन तो उसी का पैदा किया हुआ है। इस मुसीबत से अपने को बचाने की चिन्ता करती हुयी वह नरम होकर बोली, "मां जी, आपकी मृत्यु की बात सुन कर मुझे बड़ी बेचैनी हो गयी है। घर में बड़े-बूढ़े के रहने से बड़ा भरोसा होता है । अब मैं आपको मरने नहीं दूँगी। घर का सारा काम-काज बहू सम्हालेगी । आपकी सेवा में मैं रात-दिन लगी रहूँगी और किसी शिकायत का मौक़ा नहीं दूँगी। अब आप मरने की बात भूलकर भी ज़बान पर नहीं लाइयेगा ।"

शांताबाई अपनी बहू की समझदारी की बातें सुनकर हँस पड़ी । इसके बाद वह अपनी बहू द्वारा सभी प्रकार से सुखसेवा प्राप्त करती हुयी आनन्दपूर्वक अपने दिन बिताने लगी ।

हमारे देश के स्मारक

अमृतसर-स्वर्ण-मन्दिर
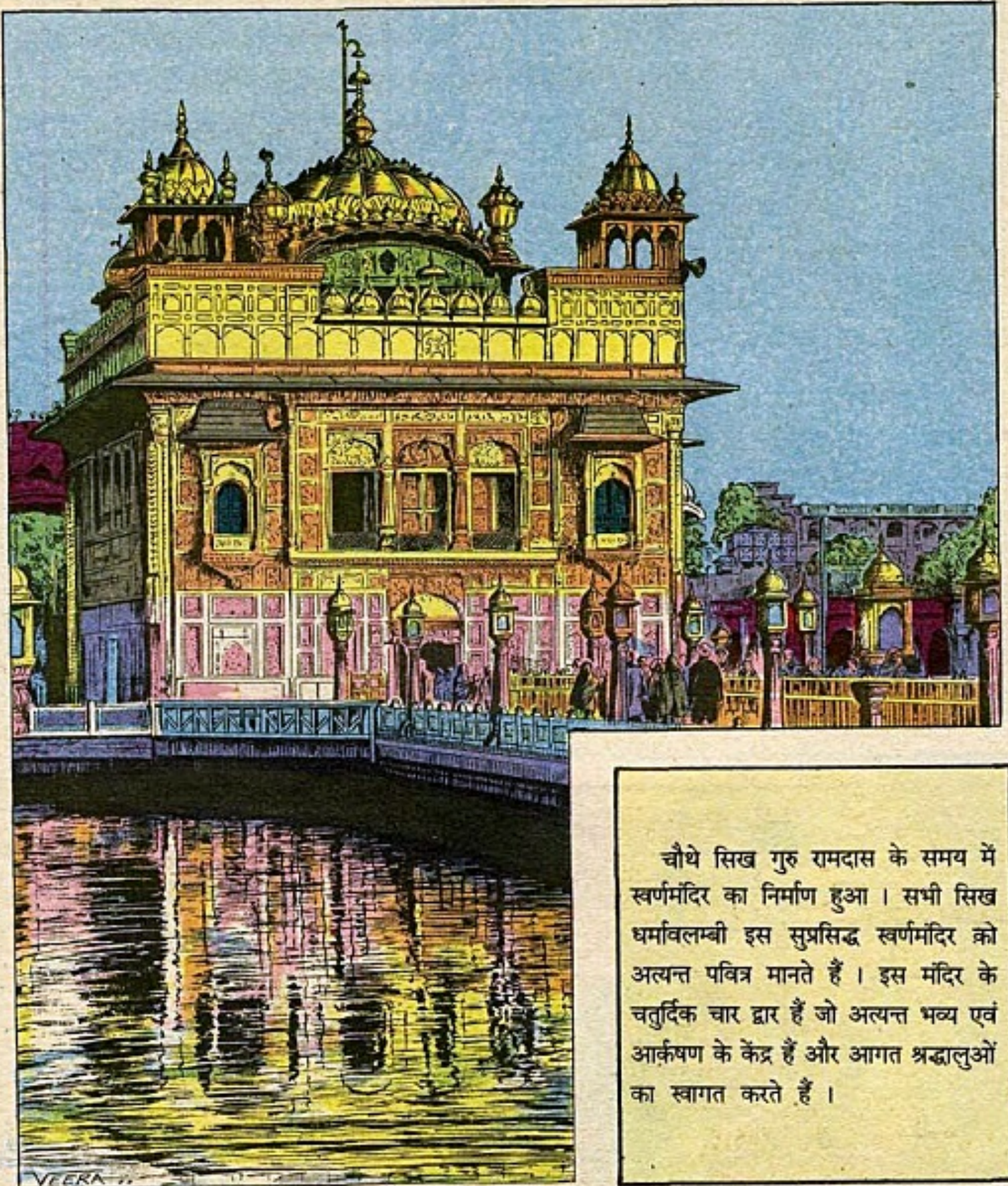
चौथे सिख गुरु रामदास के समय में स्वर्णमंदिर का निर्माण हुआ। सभी सिख धर्मावलम्बी इस सुप्रसिद्ध स्वर्णमंदिर को अत्यन्त पवित्र मानते हैं। इस मंदिर के चतुर्दिक चार द्वार हैं जो अत्यन्त भव्य एवं आर्क़षण के केंद्र हैं और आगत श्रद्धालुओं का स्वागत करते हैं।

सम्राट अकबर ने इस प्रदेश को चौथे सिख गुरु रामदास को उपहार में दिया था। १५७९ में गुरु ने वहाँ पर एक तालाब खुदवाया और उसका नाम "अमृतसर" रखा उस तालाब के चारों ओर जो नगर बसा वह भी "अमृतसर" के नाम से ही विख्यात हुआ।

पांचवे गुरु श्री अर्जुनदेव ने तालाब के बीचोबीच मंदिर का निर्माण शुरू करवाया। उन्होंने मंदिर की नींव मीयास मीर नामक इसलामी धर्माचार्य से रखवा कर संसार को अपनी धर्मनिरपेक्षता का प्रमाण दिया।

ई० सन १८०३ में महाराज रणजीत सिंहने मंदिर के नीचे के आधे भाग को संगमरमर के पत्थरों से जड़वा दिया। छत को तांबे के चद्दर से मढ़वाया और उसके बाद ४०० किलोग्राम सोने का लेप चढ़वाया।

स्वर्ण मंदिर के पार्श्व में सिखों का गुरूपीठ अकाल तख्त अमर सिंहासन है। इस अकालतख्त की स्थापना सिखों के छठे गुरू श्री हरिगोविन्द सिंहजी ने की थी। गुरूओं के द्वारा प्रयोग में लाये गये शस्त्र यहाँ पर सुरक्षित रखे गये हैं।
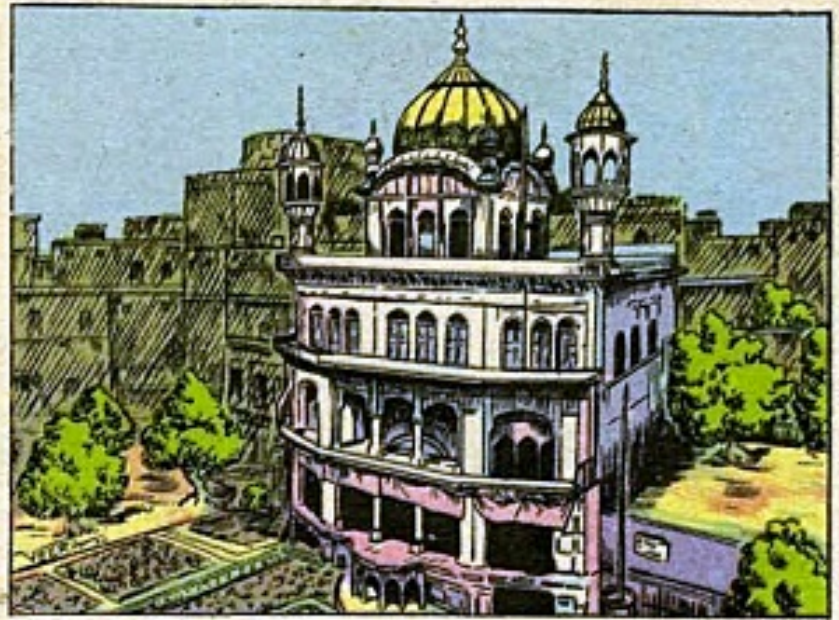
स्वर्ण मंदिर में संगीत, मंत्र और श्री ग्रन्थसाहिब का पाठ बराबर चला करता है। मंदिर में श्रद्धालु दर्शनार्थियों की भीड़ बराबर लगी रहती है। इस मंदिर का प्रांगण ऐतिहासिक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

अमृतसर का एक और प्रसिद्ध धार्मिक संस्थान बाबा अटलगुरूद्वार है। अनेक महान व्यक्तियों के द्वारा प्रयोग की गयी पवित्र वस्तुओं एवं स्मृति-चिन्हों का भंडार यहाँ सुरक्षित है। धार्मिक कार्य कलापों की दृष्टि से भी यह संस्थान अधिक क्रियाशील है।

बाबा अटल गुरुद्वार में सिख धर्म संबंधी ऐतिहासिक घटनाओं से चित्रित अनेक धातु की चद्दरें हैं। स्वर्ण मंदिर के पास ही बनी यह नौमंजिली इमारत श्री हरगोविंद के पुत्र बाबा अटल राय की याद दिलाता है।

स्वर्ण मंदिर के दक्षिणी ओर अत्यन्त विशाल गुरु का बाग है। तीस एकड़ के क्षेत्रफल में व्याप्त यह बगीचा संतरा, और विभिन्न सुस्वादु फलादि वृक्षों से शोभित है। इस बाग में स्थित तालाब और छोटे छोटे मण्डप इसकी शोभा में चार चाँद लगाते हैं।
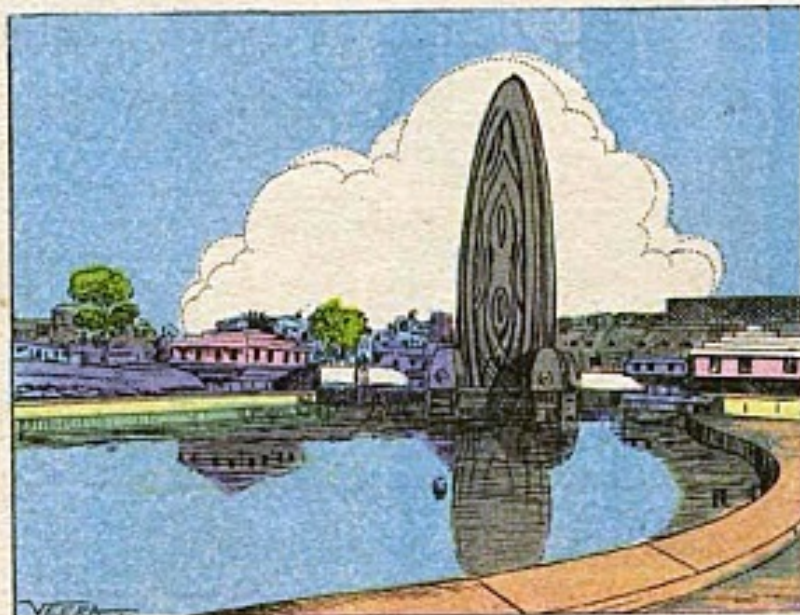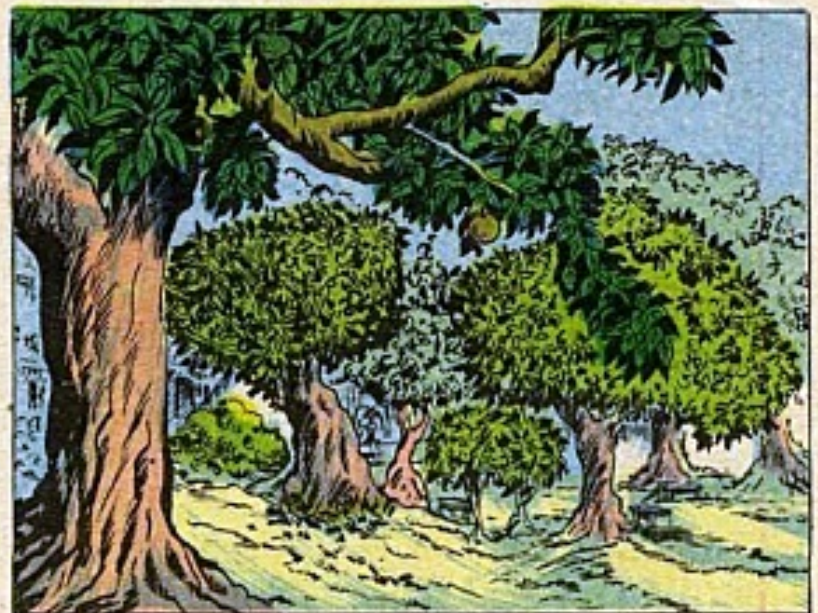
स्वर्ण मंदिर से सटे जालियाँवाला बाग भी है। १३ अप्रैल १९१९ में एक आततायी दुष्ट अंग्रेज़ अधिकारी जनरल डायर के आदेश पर इस बाग में दो हज़ार स्त्री पुरुष बच्चे बूढ़े लोगों को निर्दयता पूर्वक गोलियों से भून दिया गया था। स्वतंत्रता के उन अनाम शहीदों के स्मृति-चिन्ह के रूप में यहाँ पर एक राष्ट्रीय स्मारक का निर्माण किया गया है

नटखट भूत

बीरगाँव नामक एक देहात में मोतीलाल नाम का एक मज़दूर रहा करता था। दूसरों का सामान ढोकर उसे जो मज़दूरी मिलती, उससे अपने परिवार का भरणपोषण करता था। परिवार में उसकी एक पत्नी और चार पुत्र थे। चंद्रमुखी नदी के किनारे पर आगत यात्रियों की सेवा करके प्रतिदिन वह अपनी आवश्यकता से अधिक कमा लेता था। और इस तरह आनन्दपूर्वक अपने परिवार का सम्यक् निर्वाह करने के बाद भविष्य के लिये भी अपनी कमाई में से कुछ न कुछ बचा ही लिया करता था।

एक दिन अचानक मोतीलाल के मन में एक कल्पना उपजी। उसने सोचा कि यदि अकस्मात उसे कहीं से भारी धनसंपत्ति हाथ लगे, तो बैठे बिठाये वह अपना शेष जीवन आराम से व्यतीत कर सकता है। यह रोज काम और काम से मैं परेशान हो गया। क्या आराम की ज़िंदगी मेरे भाग्य में बदा ही नहीं है? इस तरह का सोच आते ही उसे अपनी कमाई से विरक्ति पैदा हो गयी।

मोतीलाल ने अनेकों के मुँह से यह सुन रखा या कि बीरगांव की दक्षिण-दिशा में दौलतपुर के जंगल में भूतों का निवास था। उसने किसी भाँति भूतों से दोस्ती करके उनकी मदद से करोड़पति बनने का निश्चय किया। एक दिन मोतीलाल मध्यरात्रि को ही उठकर दौलतपुर के जंगलों की ओर चल पड़ा। जंगल में प्रवेश के बाद थोड़ी ही दूर पर एक विशाल बरगद का पेड़ दिखाई दिया, जिसकी अनगिनत जटाएँ ज़मीन को छू रही थीं। उसने देखा कि एक भूत एक जटा को पकड़कर झूल रहा है।

साहस बटोरकर मोतीलाल बरगद के नीचे पहुँचा और भूत को नहीं देखने का स्वांग करते हुए ज़ोर ज़ोर से रोने लगा।

उसका रोना सुनकर भूत जटा पर झूलना छोड़

राजेन्द्र तिवारी

उसके आगे कूद पड़ा और उसको सांत्वना देते हुए पूछा, "जल्दी बताओ। तुमपर कैसी विपत्ति आयी ? जो विपत्ति में काम आयें वही सच्चा मित्र! मैं तुम्हारी भरपूर सहायता करूँगा।"

मोतीलाल ने और भी ज़ोर ज़ोर से रोते हुए कहा, "मैं क्या बताऊँ। मेरा परिवार बहुत ही बड़ा है। मैं बहुत ही दीन हीन और असहाय व्यक्ति हूँ। मेरे पास कमाई का कोई सहारा नहीं है, और मेरे बाल बच्चे भूखों मर रहे हैं। बच्चों की हालत देखकर मैं बहुत ही व्याकुल हो जाता हूँ। उनके दुखड़े मुझसे देखे नहीं जाते।"

यह करुण कहानी सुनकर भूत को दया आगयी। उसने हवा में अपना हाथ लहराया, स्वर्ण मुद्राओं से भरा एक सुवर्ण घड़ा उसकी हाथों में आगया, जिसे मोतीलाल को देते हुए उसने कहा, "इस पात्र को लेकर तुम सीधे पूर्व दिशा में चले जाओ। यदि तुम्हें बाद में धन की और आवश्यकता हो तो इस बरगद के पास फिर चले आना। डरना नहीं, जब मेरी मदद की ज़रूरत हो तो बेखटके चले आना। तुम्हारी मदद करने से मुझे संतोष होगा।"

मोतीलाल इस घड़े को लेकर आनन्द में झूमता हुआ जैसे ही थोड़ी दूर बढ़ा कि दो भूत उसके सामने आ खड़े हुए। मोतीलाल के हाथ में स्वर्ण मुद्राओं से भरे घड़े की ओर देख कर भयंकर अट्टहास करते हुए बोले, "ओह! किसी का सुख हम सहन नहीं कर सकते। इस धन से तुम अपने कष्टों को दूर करके आनन्द का जीवन बिताओगे। देरी करने पर खतरा पैदा हो सकता है।"

इतना कहना था कि मोतीलाल के हाथ का स्वर्णपूरित घड़ा मिट्टी के टिकड़ों से भरे मिट्टी के पात्र में बदल गया। इस परिवर्तन पर मोतीलाल को क्रोध आया और उसने मिट्टी के घड़े को ज़मीन पर दे मारा। दोनों भूत मोतीलाल की इस हरकत को देखकर हंसते हुए एवं उछल-कूद मचाते हुए अचानक गायब हो गये।

उसके बाद मोतीलाल दुखी होकर घर लौटा। दूसरे दिन उसका काम पर मन नहीं लगा और अनायास ही वह दौलतपुर के जंगलों की ओर फिर चल पड़ा। दूर से ही उसने देखा कि उसकी भलाई करनेवाला भूत जटाओं पर झूल रहा है।

मोतीलाल ने भूत को सारा वृत्तान्त बतलाया। सारी बातें सुनकर भूत बोला, "तुम चिंता मत करो! तुम्हारी सहायता करना मैं अपना कर्तव्य समझता हूँ। बिना डर के अपने दुख मुझे बता दो। किसी का दुख मुझसे सहा नहीं जाता। दूखी लोगों की मदद से मुझे बहुत सुख मिलता हैं।" ऐसा कहकर भूत ने फिर स्वर्ण मुद्राओं से भरा एक स्वर्णपात्र मोतीलाल को देकर इसबार उसे दक्षिण दिशा की ओर से जाने का निर्देश दिया।

इस बार मोतीलाल दक्षिण की ओर चल पड़ा। अभी वह कुछ ही दूर गया होगा कि दूसरों के सुख को देख कर जलनेवाले वे दोनों भूत उसके सामने आ धमके और व्यंग्यपूर्वक बोले, "वाह! लगता है इसकी क़िस्मत खुल गयी है। यह कैसा सुन्दर उल्लू इसके हाथों में है। और यह इसे कहाँ ले जा रहा है? हमारे यहाँ होते हुए यहाँ की चीज़ कैसे कोई ले जा सकता है?"

और सचमुच ही दूसरे ही क्षण मोतीलाल के हाथों में स्वर्णकलश की जगह एक सुन्दर उल्लू नज़र आया। उसे देखते ही मोतीलाल सिहर उठा और उसने उल्लू को दूर फेंक दिया। दोनों भूत भी हंसते हुए गायब हो गये। मोतीलाल के दुख का पारावार न था। वह घर तो लौटा, पर काम पर नहीं गया। इस बार वह विचार करते हुए बरगद के नीचे फिर पहुँचा कि वह अपनी भाग्य की रक्षा पूरी सावधानीपूर्वक करेगा। भूत ने उसकी पूरी कहानी सुनी, उसे धीरज बंधायी, और उसे स्वर्ण मुद्राओं सहित पात्र देते हुए इसबार ईशान्य दिशा होकर जाने को कहा।

मोतीलाल जो पहले से ही जला भुता था

क्रोधित होकर बोला, "तुम्हारे बताये गये मार्ग से मुझे दोनों बार धोखा तथा नुक़सान हुआ है। मैं स्वर्ण-मुद्राएँ घर न ले जा सका। इस बार भी ऐसा नहीं होना चाहिए। इस बार मैं सीधा गांव को लौटूँगा।"

इसपर भूत ने भी क्रोधावेश में आकर कहा, "मुसीबत में फँसे लोगों की मदद करना मेरा शौक है, किन्तु मेरे जो दोनों दोस्त तुम्हें दिखाई दिये, उनका शौक मुझ से सहायता प्राप्त दुखियों को रुलाना है। इसलिये जिस दिशा में तुम्हें जाने को मैं कहता हूँ अगर तुम नहीं जाते तो वे दोनों मित्र बहुत ही दुखित होंगे। उन्हें मैं दुखित नहीं देख सकता। हम तीनों ज़िगरी दोस्त हैं। अगर तुम ईशान्य दिशा से होकर नहीं जाओगे तो मैं उन्हें यहीं पर बुला लेता हूँ।" यह कहकर परोपकारी भूत अदृश्य हो गया।

तभी दोनों नटखट भूत वहां पर हाज़िर हुए। मोतीलाल के हाथ के स्वर्ण पात्र तथा मुद्राओं को राख में बदल दिया, और चिल्लाते हुए बरगद पर चढ़ गये।

मोतीलाल डरा नहीं। अब उसे भूतों का नाटक समझ में आ गया। एक भूत उसे सोना देने का स्वांग करता है तो दूसरे उसे अदृश्य करके मनोरंजित होते हैं। उसे यह कहावत बहुत ही प्रासंगिक लगी, "लालच बुरी बला और लोभ दुख का हेतु है।" अब तक वह तीन दिनों की मज़दूरी से वंचित हो गया था और भयंकर मानसिक उत्पीड़न से होकर गुजरा था।

इस अनुभव के बाद मोतीलाल ने लोभ और लालच के विषय में कभी सोचा ही नहीं और मज़दूरी करते हुए सुखपूर्वक संतोष से जीवन बिताने लगा।

अब उसने जीवन का सच्चा रहस्य समझा। पसीने की कमाई ही सच्ची कमाई है। मुख में मिला धन किसी के काम नहीं आता। जो मेहनत करेगा उसे ही जीवन के सच्चे सुख मिलेंगे। नटखट भूतों ने क्या ही उपयुक्त पाठ पढ़ाया।

सारा गोकुल एक साथ उमड़ पड़ा। सब लोग यात्रा की तैयारी में व्यस्त हो गये। सामान ढोनेके लिये तरह तरह के बाहनों का प्रबंध किया। गया। पहियों में तेल डाला गया। बैलों को अच्छी तरह खिलाया-पिलाया गया। सारे सामान गाड़ियों पर लादे गये। दूध और घी की हाँड़ियों को सुरक्षित स्थान पर रखा गया। चावल, धान आदि सामग्री बोरों में भरकर बाँध दी गयी। किसम किसम की रस्सियाँ, पगहे, मथानियाँ, हँसियाँ, छुरियाँ, भाले, घंटे आदि औज़ार सुरक्षित रखे गये। इस तरह यात्रा की तैयारियाँ पूरी हो गयीं

जानवरों को हाँकते हुए बलशाली लोग आगे निकल पड़े। जानवरों के झुंडों के पीछे गाड़ियाँ चल पड़ीं। उनके पीछे आदमी चलने लगे। नारियाँ एक गुट बनाकर चलते चलते हँसी-मज़ाक करती हुई मनोरंजन करने लगीं। बीच-बीच में समूह-गीतों के दौर चले। लूले, लंगड़े, बूढ़े और अपाहिज़ों की मदद नौजवान करने लगे।

इस तरह गोकुलवासी वृन्दावन पहुँच गये। गोपालकों में से बजुर्ग लोगों ने घर बनाने के लिए सुयोग्य स्थलों को चुना। एक कतार में आकर सारी गाड़ियाँ अर्ध-चंद्र की आकृति में रुक गईं। कुछ लोगों ने अपनी झोंपड़ियाँ बनवा लीं। कुछ लोगों ने थोड़े समय के लिए लता-मंडपों को अपने निवास-स्थान के रूप में उपयोग करना शुरू किया। कुछ लोगों ने वृक्षों के नीचे अपने डेरे डाले। कुछ लोगों ने काँटेदार झाड़ियों से स्नान-गृह बनवा लिये। एक दिन पूरा नहीं हुआ और वृन्दावन गोपकों के लिए स्वस्थान बन गया।

४. विषवृक्ष का निर्मूलन

दिन पर दिन बीतते गये । बन-ठनकर विचरनेवाली गोपियाँ अपने विविध कामों के लिए इधर-उधर दौड़नेवाले गोप तथा पुष्ट गायों के झुंडों से वृन्दावन की भूमि शोभायमान हो गई ।

दिन-ब-दिन गोपालों की संपत्ति बढ़ने लगी । क्रमशः झुंड़ों में विस्तार होने लगा । गोपालकों ने छोटे-छोटे सुंदर घर बनवा लिये । उनके इर्द-गिर्द पेड़-पौधे लगाये । वृंदावन एक रमणीय स्थल बन गया । लोग आराम से जीवन काटने लगे । अब बालकृष्ण तेरह साल का हो गया था ।

इधर ग्रीष्म ऋतु प्रारंभ हुई । अनपेक्षित रूप में गायें तरह तरह की बीमारियों के शिकार होने लगीं । वे कांपने लगीं, ठीक खड़ा होना भी उनसे संभव नहीं हुआ । वे मुँह से झाग उगलने लगीं, उनकी गर्दनें लटक गईं । फटने के कारण खुरों में कीड़े निकल आये ।

गायों को बीमारियों से बचाने के लिए गोपालकों ने दवा-दारू की, तरह तरह की जड़ी-बूटियों का उपयोग किया । मगर कोई फ़ायदा नहीं हुआ । वे समझ न सके कि अब क्या किया जाए । यमुना नदी के किनारे पर जंगलों में पाये जानेवाले सभी मृग, जंतु, पक्षी और कीड़े-मकौड़ों में ये बीमारियों बुरी तरह फैल गयीं । उनसे गोपकों में भी ये बीमारियाँ फैल गयीं ।

नंद, यशोदा और रोहिणी भी इन बीमारियों के शिकार हो गये । कृष्ण को लगा कि उस स्थान को छोड़ जाने पर ही वे लोग ज़िन्दा रह सकते हैं । कृष्ण ने बलराम से सलाह की और कुछ समूहों के साथ वे एक कोस दूरी पर जाकर वहाँ बस गये । उनका अनुसरण करते हुए कुछ और गोपकों ने भी ऐसा ही किया । इस तरह जिन लोगों ने उस प्रदेश को छोड़ा वे व्याधियों से बच गये ।

नंद ने उस गाँव को छोड़ना स्वीकार न किया । उसने कहा—"हमारा स्थान यहीं है । यहाँ पर जो भी उत्पात मचेंगे, हमें उनका सामना करना होगा । और फिर सभी रिश्तेदारों के साथ जाएँगे तो कहाँ जाएँगे?" नंद, यशोदा और रोहिणी जब बीमारियों से पीडित होकर उस गाँव को न छोड़ने पर तुल गये, तब कृष्ण समझ न पाये कि आख़िर क्या किया जाए?

गोकुल में विदेह से आया एक बूढ़ा गोप था। उसने गोपालों के प्रतिनिधियों को समझाते हुए कहा—"देखो बेटो, हमारी जीविका का प्रमुख आधार है हमारे पशु। शिवजी पशुपति हैं। शिवजी की प्रार्थना करने पर वे हमारे संकट दूर कर सकते हैं। शिवजी परम दयालु हैं। शरणागत की ज़रूर सुनते हैं। जो शिवजी का कृपा-पात्र बन गया, उसके लिये मुश्किल कुछ नहीं। यों निराश होकर बैठने से भला क्या होगा? पुरोहितों को बुलाकर शिवजी की प्रार्थना करना शुरू कीजिए।,

गोपकों ने इस बुजुर्ग की सलाह मानी और सुयोग्य पुरोहितों को बुलाकर शिवजी के प्रार्थना-यज्ञ के प्रारंभ का प्रबंध किया। एक सप्ताह तक दिन-रात शिवजी की अर्चना, पूजा अभिषेक तथा नैवेद्य चले। सभी गोपालकों ने बड़े भक्ति-भाव से शिवजी का आवाहन किया। श्रद्धा-भक्ति के शत-शत फूल चढ़ाये। सात दिन तक शिवजी की अर्चना निर्विघ्न संपन्न हुई। सातवें दिन की दोपहर को एक उत्तम पुरोहित में किसी विशेष शक्ति का प्रवेश हुआ। उस आवेश में पुरोहित विकृत हास्य करते हुए भयंकर नृत्य करने लगा। पुरोहित की आकृति-प्रकृति देखकर सब लोग घबडा गये। ऐसा क्यों हो रहा है, किसी की समझ में नहीं आया।

उसने कहा—"परम शिव ने कैलास से मुझे भेजा है। उन्होंने मुझसे कहा है—'अरे शंखकर्ण, कालिन्दी के किनारे फैली बीमारियों से मुक्ति पाने के लिए लोगों की सहायता करो। जाओ।' तुम लोगों ने शिवजी की जो अर्चना की है, उससे वे बहुत संतुष्ट हैं। जानते हो, तुम लोग उस प्रकार की बीमारियों के क्यों शिकार हो गये हो? द्वापर युग के अन्त में भूलोकवासियों को सताने के हेतु राक्षसों ने अनेक जन्म धारण किये। उस समय विरोचन के पुत्र कालकलि नामक राक्षस ने एक ज़हरीले कैथे के पेड़ के रूप में यमुना के दक्षिण तट पर जन्म लिया। उस राक्षस के सेवक उस वृक्ष के चारों तरफ़ कँटीले पेड़ों के रूप में पैदा हुए। उस विषैले कैथे के पेड़ की हवा लगने से तुम लोगों को तथा तुम्हारे पशुओं को ये सब बीमारियाँ बुरी तरह सता रही हैं। इसी कारण यहाँ का जल भी दूषित हो गया है। नन्दगोप के पुत्र कृष्ण और बलराम इस विष-वृक्ष को समूल

उखाड़कर फेंकने की क्षमता रखते हैं। अगर वे इस कार्य को स्वीकृत करें तो तुम लोग जीवित बच सकते हो। परम शिव ने यह संदेश तुम लोगों तक पहुँचाने के लिए मुझे यहाँ भेजा है। मुझे आश्वस्त कीजिए, मैं चला।"

यह सब सुनानेपर ब्राह्मण के भीतर का आवेश भी धीरे धीरे ठंडा पड़ गया। अर्चना के लिये आये सभी पुरोहितों ने शिवजी की पूजा-अर्चना की आखिरी रस्में पूरी कीं। और तुरन्त कुछ गोपालकों को बलराम-कृष्ण को बुला लाने के लिए भेजा गया। बालकों से सब वृत्तान्त सुनने पर दोनों भाई बोले, "ईश्वर का आदेश मिला, यह बड़ी अच्छी बात हुई। अपने माता-पिता और जाति के लोगों को बचाने के लिये इससे और अच्छा मौक़ा कौन हो सकता है? चलो, हम अभी उस विषवृक्ष को ढूँढकर उसे उखाड कर तहसनहस कर देंगे।"

कृष्ण-बलराम ने आकर ब्राह्मणों को और शिवजी को साष्टांग प्रणिपात किया, शिवमंदिर की परिक्रमा की और कुल्हाड़ियाँ उठाकर जंगल की ओर चल पड़े। कुछ और बालक और हट्टेकट्टे लोग भी उनकी मदद के लिये उनके साथ निकल पड़े। कृष्ण-बलराम आगे और सब पीछे बड़े हौसले से चल रहे थे। कृष्ण के नेतृत्व में विष-वृक्ष को जड़ से उखाड़नेका सब ने मानो संकल्प किया था।

शिवजी की अर्चना के फलस्वरूप अधिकांश लोग स्वस्थ हो चुके थे। कुल्हाड़ियाँ उठाते उठाते उन्होंने सिंहनाद किया!

विषवृक्ष को ढूँढने में उन्हें कोई कष्ट नहीं हुए। वे जैसे ही जंगल के अंदर पहुँचे, वैसे ही एक विशेष दुर्गन्ध का उन्होंने अनुभव किया। दुर्गन्ध की दिशामें वे जैसे जैसे आगे बढ़ते रहे, वैसे वैसे दुर्गन्ध भी असहनीय होती गयी। शीघ्र ही वे सब उस वृक्ष के पास पहुँचे। राक्षस जैसी भयंकर आकृति लिये वह वृक्ष मानो आसमान को छू रहा था। उसके चारों ओर कँटीले पेड़ पौधे भूत जैसे खड़े थे। कृष्ण-बलराम ने उन कँटीले पेड़ों को काटकर उस विषवृक्ष तक जाने के लायक़ रास्ता बनाया। और सब के सब उस वृक्ष के समीप पहुँचे।

उस विषवृक्ष का तना तीस बाँस ऊँचा था,
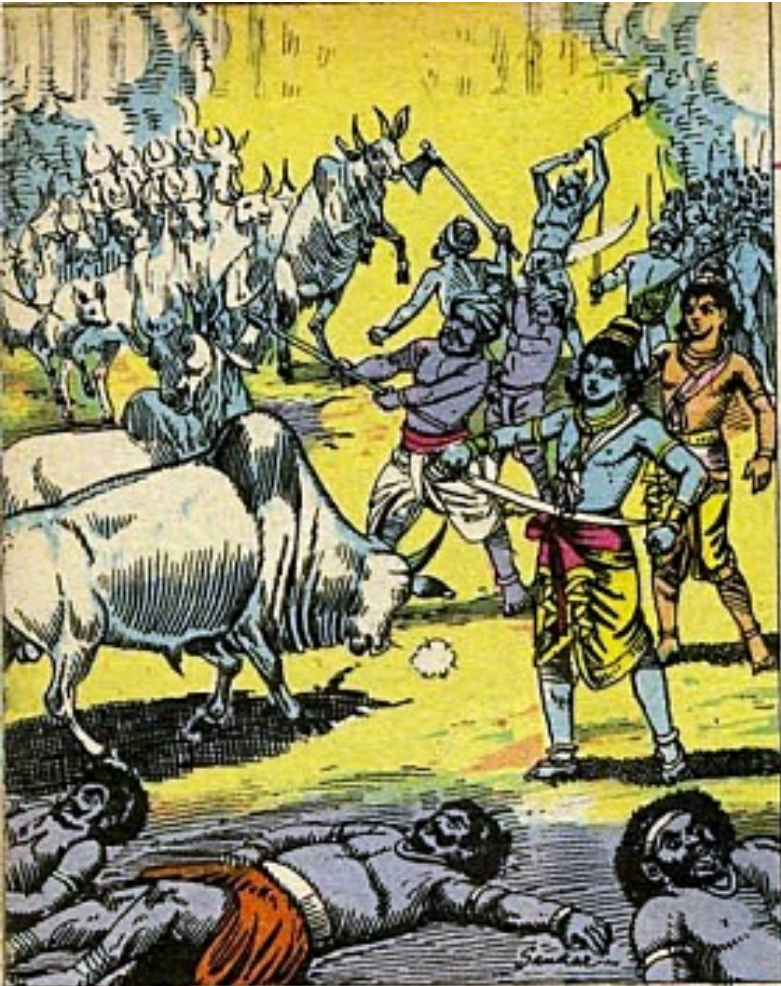
उसके फल हाथी के सिर जितने बड़े थे, और उसकी शाखाएँ चारों तरफ़ दूर तक फैली हुई थीं । उसके फलों से ही दुर्गन्ध फैल रही थी । इसलिये कृष्ण ने पहले उन फलों को नष्ट करने का निर्णय किया ।

इसके बाद बलराम व कृष्ण सभी कच्चे व पके फलों को तोड़ने लगे । बाकी लोग भी शाखाओं से लटके फलों को लाठियों और पत्थरों से गिराने लगे । शाखाओं को भी तोड़कर फेंकने लगे । साथ साथ कोलाहल भी करने लगे

एक ओर इस प्रकार कृष्ण-बलराम वृक्ष को ध्वंस करने में लगे, तो उधर दूसरी ओर से वहाँ घूमनेवाले गाय व बछड़े नहीं थे, बल्कि पेड़ों के रूप धारण करनेवाले राक्षसों की पत्नियाँ और बच्चे थे । वे ही गाय-बछड़ों के रूप में वहाँ आसपास विचर रहे थे ।

कृष्ण व गोपों के हमले से वृक्षों में बसे राक्षस खून उगलते हुए अपने निज रूपों में गिरकर मरने लगे । गायों के रूप धारण किये राक्षस-नारियाँ यह देखकर क्रोध में आकर कृष्ण को अपने सींगों से मारने की कोशिश करने लगीं बड़ी आसानी से कृष्ण ने उनको भगा दिया । बलराम और अन्य गोप भी राक्षस नर-नारियों का खातमा कर रहे थे । उन सब का आवेश अवर्णनीय था । इसके बाद थोड़ी ही देर में उस वृक्ष को जड़ समेत उखाड़ दिया गया ।

गोपकुमारों ने वृक्ष के टुकड़ों, तथा उसके चारों ओर की कँटिली झाड़ियों और वहाँ मरे पड़े राक्षसों के शरीरों का एक बड़ा ढेर बनाया । इस ढेर में उन्होंने आग लगा दी । देखते देखते आग की लपटें आकाश को छूने लगीं । अग्निदेव ने भी बड़े प्यार से पेड़ पौधों व राक्षस-कलेवरों को अपनी बाँहों में समा लिया । अन्त में वहाँ पर केवल चिताभस्म रह गया । विष-वृक्ष को समूल उखाड़ने में सफल हुए गोपालक अब प्रसन्न थे । जिस भूमि पर विष-वृक्ष खड़ा था, उसको समतल देखकर वे ज़ोर-ज़ोर से तालियाँ बजाकर नाचने-गाने लगे ।

इस बीच गोपालकों के शरीर पसीने से तर होकर उनपर राख चिपक गयी थी । खूब थकावट के बावजूद भी वे बहुत खुश थे । शोरगुल करने हुए वे सब यमुना किनारे पहुँचे और पानी में

कूदकर उन्होंने स्नान किया, गोते लगाये, पानी पर थपकियाँ देते हुए उन्होंने गीत गये। इस प्रकार काफ़ी देर तक जलक्रीड़ाएँ करने के बाद वे सब पानी के बाहर निकले। वहीं घरकी औरतों से लाया खाना उन्होंने नदी किनारे बैठकर खाया और खेलते-कूदते, नाचते-गाते सब अपने-अपने घर लौटे।

दिन बीतते गये। सारी बीमारी हटकर मनुष्य एवं पशु भी स्वस्थ हो गये। सब में मानो एक नए जीवन का संचार हुआ। जीवन आनन्द से परिपूर्ण हो गया। इस बीच ग्रीष्म काल व्यतीत हो गया। वर्षाकाल के आगमन की सूचना देने आसमान में काले बादल छाने लगे। मेघों का गर्जन सुनकर सब लोग आनन्द से झूमने लगे। शीघ्र ही ओलों के साथ वर्षा आरंभ हुई। सारी पृथ्वी हरीभरी हो पुलकित हो उठी। झरने पूरे प्रवाह के साथ बहने लगे। ठंड़ी-ठंड़ी हवाओं ने सारे वातावरण को आह्लाददायक बना दिया। प्रकृति की उस सुरम्य गोद में खेलने-कूदने का आनन्द सब लूटने लगे।

ऐसे आनन्द के समय विदेह देश में भय एवं उत्पातों से पूर्ण कुछ असाधारण घटनाएँ घटित होने लगीं। यशोदा का भाई कुंभक उस प्रान्त का निवासी था। कुंभक के पुत्र का नाम था श्रीधाम तथा कन्या का नाम था नीला। कुंभक गोधन में वहाँ का सबसे संपन्न व्यक्ति था। दानशीलता और धर्मगुणों के लिये वह विशेष विख्यात था। कोई भी याचक कुंभक तथा उस की पत्नी से कोई दान मिले बिना लौटा नहीं जाता था। दीन-दरिद्रों

का दुःख दूर करना मानो कुंभक का व्रत था। कुंभक अपनी सपत्ति को सब की संपत्ति मानता था।

प्राचीन काल में विष्णु ने जब तारकासुर के साथ युद्ध किया था, तब कुंभक ने कालनेमी के सात पुत्रों का वध किया था। वे सातों राक्षस कुंभक से प्रतिशोध लेने के विचार से उसके स्थान गोव्रज में सात साँड़ों के रूप में जन्म ले चुके थे। उन के अत्याचारों की कोई सीमा न थी। पशुओं के झुंड़ों में घुसकर जो भी गाय या बैल सामने आयें-उसे वे मार डालते थे। गोपालकों पर सींग चलाने और उनपर अपने खुरों का प्रहार करके उन्हें नीचे गिरा देते थे। गोशाला में बंधे पशुओं पर भी हमला करके वे उन्हें मार डालते थे।

उनके ऐसे उत्पात नित्यप्रति बढ़ते ही जाते थे। कुंभक ने उन साँड़ों को पकड़ो के बहुत से प्रयत्न किये। असंख्य योद्धा और मल्ल उनका संहार करने जाकर खुद आहत होकर लौटे। कुंभक की चिंता की कोई सीमा न रही। वे अपनी असमर्थता पर सदा चिंतित रहने लगे। कुंभक अपने ग्रामवासियों को अपनी संतान के समान मानता था। उनके कष्टों को वह अपने कष्ट मानता था। उसे खाना-पीना नहीं रचता था और रातों में उसे नींद आती थी। वह इतना परेशास रहने लगा कि लगता था, वह इसी चिंता में घुले-घुले कर मर जाएगा था पालग हो जाएगा।

उधर सांड़ों के हौसले बढ़ते गये। वे सारे ग्रामवासियों को नाकों दम करते थे। सारा गौव कि दम उन सांड़ों कि अत्याचारों से तंग आगया था। उन सी मदद करने वाला कोई न था। अब वे जाए तो किस की शरण में जाए? आखिर कोई उपाय भी तो हो। उनकी नींद हराम हो चुकीं थी। जान की खैर न थी। सब सिदम भयभीत थे।

जब गाँव वाले उन दुष्ट सांड़ों से तंग आ गये और उनसे बचने का कोई उपाय नहीं रहा तो सबने मिलकर निश्चय कर लिया कि अब राजा की शरण में जाने के सिपाय कोई रास्ता नहीं है। अन्त में इन अत्याचारों से पीड़ित होकर सारी प्रजा मिथिला नगर के राजा के पास पहुँची और उनसे प्रार्थना की, "महाराज, कुंभक के गायों के रेवड़ में पैदा हुये सात साँड़ हमारे रेवड़ों तथा हरे-भरे खेतों का सर्वनाश कर रहे हैं। हम लोग आज तक यह सोचकर सारे कष्ट सहते रहें कि शीघ्र ही इन सांड़ों से हमारा पिंड छूट जाएगा और ये दो-चार दिन हमें सताकर अपने रास्ते चले जाएंगे। अब लगता है कि ये हमारा पीछ नहीं छोडेंगे। अब आप उनका संहार करके हमारी रक्षा न करेंगे तो हमें इस राज्य को छोड़कर अन्य राज्य की शरण लेने के सिवा कोई चारा नहीं। आपही हमारी रक्षा कीजिए। हम तो आपकी प्रजा हैं, हमारी रक्षा करना आपका कर्तव्य भी तो है।"
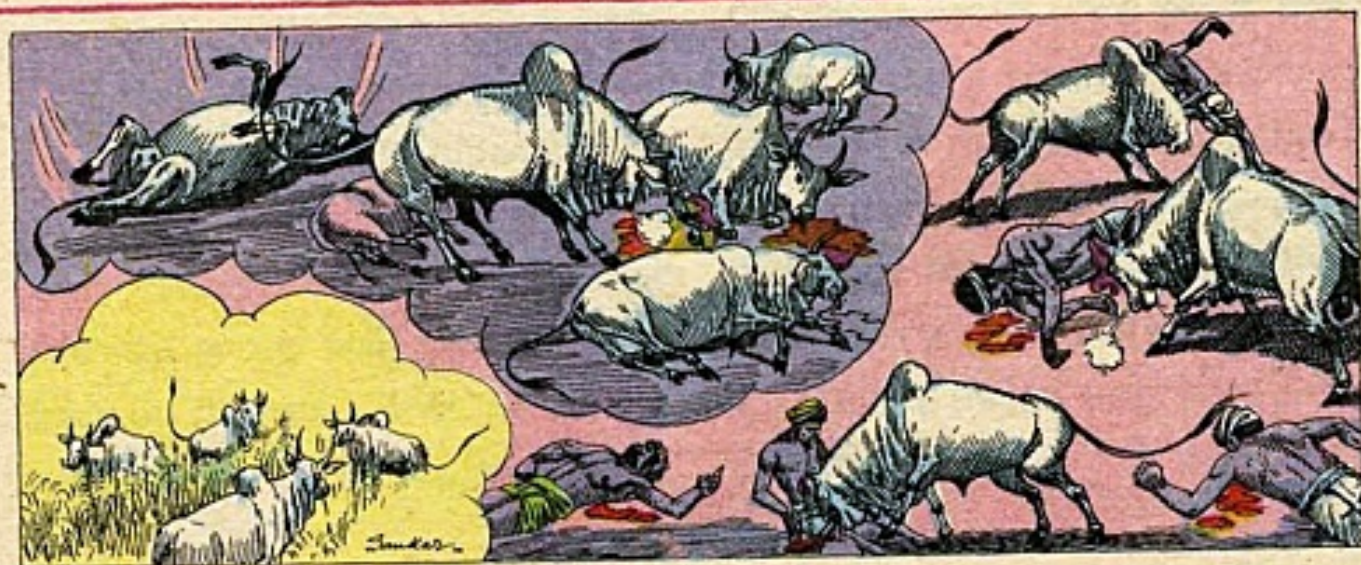
साहसिक कार्य

हेमगिरि एक छोटा खूबसूरत गाँव था। दस लुटेरों का एक समूह बार बार हेमगिरि पर हमला करता। धन, धान्य, सोना और वाहनों के साथ लुटेरे हर बार दो एक औरतों को तथा बालकों को भी उठा ले जाते थे। इस कारण हेमगिरि की प्रजा हमेशा डरी-डरी रहती और बड़े कष्टों के साथ अपने दिन गुज़ार देती थी। उनकी समझ में नहीं आता था कि इस हालत में क्या करें। खूब सोचते रहे।

आखिर वे अपने इस प्रकारके जीवन से ऊब गये और हेमगिरि को छोड़कर कहीं और जाने का उन्होंने निश्चय किया। उन्होंने वीरसेन नामक युवक को यह कार्य सौंपा कि वह उनके लिए एक उचित स्थान को ढूँढ़ ले। वीरसेन अपने कर्तव्य को पूरा करने के लिए निकला।

सब से पहले वीरसेन पड़ोस के गाँव में पहुँचा और वहाँ के अधिकारियों से मिलकर सारा वृत्तान्त सुनाया। गाँव के अधिकारियों ने सारा समाचार जान किया और सलाह दी—"देखो भाई, अगर तुम्हारे गाँव के लोग यहाँ आकर बस जाते हैं तो संभव है, लुटेरे यहाँ आकर हमला करेंगे। बलवान लोग दुर्बलों का पीछा करते हुए उनको सताते ही रहेंगे। यदि तुम्हारे गाँव के लोग एक हो जायें तो दस लुटेरों को मार भगाना कोई बड़ी बात नहीं है। तुम लोगों की कमज़ोरी जानकर ही तो वे तुम्हारे गाँव पर हमला करने का साहस करते हैं। हमारे गाँव की सीमा तक पटकने से वे डरते हैं।"

"महाराज, हमारे ग्रामवासियों को एक सूत्र में बाँधना हमारे बस की बात नहीं है। वैसे सब लोग लुटेरों का सामना करने के विषय में एकमत ज़रूर हैं, पर बिल्ली गले में घंटा टाँगने का काम कौन करेंगे, यही सवाल है।"—वीरसेन ने कहा।

अधिकारी थोड़ी देर तक सोचता रहा, फिर बोला—"हमारे गाँव में एक महान् योगी रहते हैं,

गौरी शंकर मिश्र

उनका नाम है प्रबोधानन्द। लुटेरों का सामना करने का साहस हम में उन्हीं की बदौलत आया। वे हमारे सलाहकार हैं। अगर तुम लोग अपनी समस्या उनके सामने रखो, तो वे कुछ हल बता सकेंगे ज़रूर।"

वीरसेन महायोगी प्रबोधानन्द के पास गये और अपने गाँववालों की समस्या उनके सामने पेश की। योगी ने कहा—"मैं तुम्हारे साथ तुम्हारे गाँव आना चाहूँगा, लुटेरों का सामना करने की शक्ति तुम में आएगी,ऐसा प्रबंध मैं कर दूँगा।"

इस के बाद वीरसेन तथा योगी प्रबोधानन्द हिमगिरि गाँव में पहुँच गये।

गाँव में बात फैल गई कि वीरसेन किसी योगी महात्मा को लेकर आ गये हैं। योगी के पास अनेक महान् शक्तियाँ हैं। फिर क्या था, सभी ग्रामवासी एक स्थान पर इकट्ठा हो गये और प्यार से योगी का स्वागत किया। योगी ने उनको समझाया कि ऐसा कोई काम नहीं जो हिम्मत के साथ साधा नहीं सकता।

गाँव के नेता ने योगी से कहा—"आप जो बात कह रहे हैं, उसे हम अच्छी तरह जानते हैं। पर कठिनाई यह है कि हमारे गाँववालों में से कोई लाठी या तलवार चलाने की कला नहीं जानता। इस स्थिति में हम लुटेरों का सामना कैसे कर सकते हैं?"

प्रबोधानन्द ने समझाते हुए कहा—"हिम्मते मर्दां तो मददे खुदा। हिम्मत हो तो साधारण आदमी भी साहस का कार्य कर सकता है। मैं आप लोगों को हिम्मतवर बना सकता हूँ। लुटेरों का सामना करने का उपाय मैं आपको बता दूँगा। शर्त यह है कि आप लोग रोज़ थोड़ी देर के लिए मेरे पास आकर मेरी सलाहें सुनते रहें।"

"आप हमें लाठी और तलवार चलाना अवश्य सिखाइए। अथवा कोई अद्भुत उपाय सिखाइए। केवल अंट-संट बातों से हमारा और आपका समय नष्ट मत कीजिए।" नेता ने नम्रता के साथ कहा।

"मेरे पास कोई जादू या अद्भुत उपाय नहीं है, जिससे आप लोग लुटेरों को भाग सकते हैं। आप लोग मेरी बात सुन लीजिए। यदि मेरी बातों पर आपका विश्वास न हो, तो मेरी परीक्षा लेने के लिए आप में से कोई एक आगे आएँ। मैं

एक ही दिन में उसके द्वारा एक साहसिक काय संपन्न करा सकता हूँ ।" योगी ने कहा ।

ग्रामवासियों ने आपस में सलाह-मश्विरा किया और योगी की परीक्षा के लिए एक आदमी को चुना, उसका नाम था दुर्बल। दरअसल दुर्बल का वास्तविक नाम कोई नहीं जानता था। सब लोग उसको दुर्बल ही पुकार करते थे। यह दुर्बल और कमज़ोर दिखाई देता था। अपनी पत्नी की बात उसके लिए वेद-वाक्य के समान थी। उसकी बातों में आकर दुर्बल ने अपने माता-पिता को भी छोड़ दिया था और अपनी गृहस्थी अलग बसा दी थी। बिल्ली व चूहे को देख वह घबड़ाता, चींटी और मच्छर को देख चौंक पड़ता। बिना बीबी की इजाज़त के वह पानी तक नहीं पीता था ।

"सुनो दुर्बल, एक ही दिन में मैं तुमको ऐसा सबल बनता हूँ कि तुम मनमाना साहस कर सको। आओ, मेरे पास आ जाओ।" मुनि प्रबोधानन्द ने दुर्बल से कहा ।

दुर्बल आगे बढ़ने ही वाला था कि उसकी पत्नी ने रोककर उसे कहा—"अच्छी बात है, जाओ। योगी जो कुछ बताएँगे उसे बड़ी निष्ठा से सुनना और फिर मेरे पास आ जाना। कान खोलकर सुनो, अगर तुम कोई साहस का काम करने पर तुल जाओगे तो मैं चुप न रहूँगी।"

दुर्बल योगी प्रबोधानन्द के पास गया। योगी ने उसके कान में कहा—"सुनो, मैं तुमको जो साहस का काम करनेको कहता हूँ, यदि वह काम तुम करोगे तो तुम्हें धोखा नहीं होगा। अपनी महिमा के बल पर मैं तुम्हारी पूरी रक्षा करूँगा। इससे अपार संपत्ति तुम्हारे हाथ आएगी, तुम्हारी कीर्ति सर्वत्र फैलेगी। इस समय तुम्हारी पत्नी भले ही न माने, पर तब ज़रूर खुश हो जाएगी। तुम भली भाँति सोच लो। यह अच्छी तरह ध्यान में रखो, मेरी मदद से ही तुम कुछ साहस कर सकते हो, अन्यथा नहीं। जो मौक़ा हाथ आ रहा है, इससे वंचित न हो जाना।"

योगी की सब बातें दुर्बल ने चुपचाप सुनीं। योगी ने ये ही सब बातें तीन बार सुना दीं और फिर कहा—"अब तुम जा सकते हो। कल जब सब लोग यहाँ मिलेंगे तब मैं तुम से एक साहस का कार्य करवाऊँगा। इस लिए तुम शीघ्र ही मेरे

पास आ जाना ।"

प्रबोधानन्द ने उपस्थित लोगों को संबोधित कर के कहा—"कल एक महत्वपूर्ण सभा होगी, सब लोग अवश्य उपस्थित रहें ।"

दुर्बल की पत्नी ने सारी बातें सुनीं और गुस्सा होकर बोली—"मालूम होता है कि आप सब लोग एक षड्यंत्र रचकर मेरे पति को मुझसे दूर हटाना चाहते हैं । याद रखिए, मैं आपके इस षड्यंत्र को सफल नहीं होने दूँगी । मेरे पति के द्वारा कोई साहसिक कार्य नहीं कराने दूँगी ।" यों कहकर वह अपने पति को साथ ले गयी ।

दूसरे दिन सब लोग वहीं पर जमा हो गये । प्रबोधानन्द ने दुर्बल की तरफ़ देखकर कहा-—"दुर्बल, मैं सोचता था कि कल की हमारी मुलाक़ात के पश्चात् किसी समय तुम अकेले मेरे पास आ जाओगे । पर तुम आये ही नहीं । क्या तुम साहस का काम नहीं करता चाहते हो ?"

"स्वामीजी, क्षमा कीजिए मुझे निर्णय करने में देर लगी । मेरे मन में साहसिक कार्य करने की प्रबल इच्छा है ।"—कहता हुआ दुर्बल आगे बढ़ा और योगी के चरणों में गिर पड़ा ।

"आप सब लोग देख रहे न? मैं ने जो बात कही थी, उसे करके दिखाया ।"—योगी ने गाँववालों से कहा ।

"स्वामीजी, आप ने तो कहा था कि एक दिन में आप दुर्बल से एक साहस का काम कराएँगे । पर साहसिक कार्य करना चाहिये या नहीं इसका निर्णय करने में ही इसे एक दिन लगा । इस हालत में यह साहस का क्या काम कर सकता है? आप अपने कथन को प्रमाणित कर सकेंगे?"—गाँव के नेता ने पूछा ।

इसपर सब गाँववाले योगी की ओर देखकर परिहासपूर्वक हँस पड़े ।

दूसरे ही क्षण वीरसेन ने कहा, "अब आप लोग बिना मतलब हँस रहे हैं ! यह बात आपको शोभा नहीं देती । इन योगी महाराज के सुझाव पर ही हमारे पड़ोस के ग्रामवासी उन चोरों से अपना पिंड छुड़ा पाये हैं । क्या तुम रखते हो ऐसी हिम्मत? अब इसकी बातें आपको बड़ी सावधानी से सुन लेनी चाहिये ।"

थोडी देर के लिए योगी मौन रहा, फिर गंभीर स्वर में बोला—"आप लोगों ने ही खुद कहा था

कि दुर्बल अपनी पत्नी का विरोध करके कोई काम नहीं कर सकता । उसकी पत्नी ने कहा था कि दुर्बल द्वारा कोई साहस का काम किया जाए यह उसे बिलकुल पसंद नहीं है । ऐसा होते हुए भी अभी दुर्बल साहसिक कार्य संपन्न करनेके हेतु यहाँ उपस्थित हुआ है । इसका मतलब क्या है? दुर्बल ने अपनी पत्नी का विरोध किया है! दुर्बल ने अभी अपनी पत्नी की बातों को न मानकर साहस का कार्य किया है । क्या इससे यह सिद्ध नहीं होता कि मैंने अपने वचन का पालन किया है?''

योगी की ये बातें सुनकर वहाँ पर आये लोगों में से कुछ हँस पड़े । इस पर योगी ने समझाया—''दुर्बल को देख कर हँसने की तुम्हारी योग्यता नहीं है । अगर वह अपनी पत्नी से डरता है, तो तुम लोग लुटेरों से डरते हो । अपनी ताक़त के बल पर पड़ोसी गाँववालों ने लुटेरों को मार भगाया, वे दुर्बल को देखकर हँस सकते हैं।

योगी की बात गाँववालों को जँची । अपनी असमर्थता पर उन्हें लज्जा आई, सब ने सिर झुका लिये । गाँव के नेता ने योगी प्रबोधानन्द के चरणों में भक्ति पूर्वक प्रणाम किया और निवेदन किया—

''स्वामीजी,दुर्बल अपनी पत्नी से क्या, बिल्ली और चूहों से भी डरता था । उसके भीतर साहस पैदा करके आपने हम ग्रामवासियों की आँखें खोल दीं । अब हम सब समझ गये । अब की बार जब लुटेरे हमारे गाँव पर हमला बोल देंगे, तब हम सब एक होकर, जान हथेली पर ले उनका सामना करेंगे । दस लुटेरों को भगा देना कोई मुश्किल काम थोड़े ही है ?''

इस पर प्रबोधानन्द प्रसन्न हुए और वीरसेन तथा गाँववालों को भी आशीर्वाद देकर अपने आश्रम चले आये । जब लुटेरों को इस बात का पता चला तो उन्होंने वीरसेन के गाँव पर हमला करने का विचार ही छोड़ दिया । सारे ग्रामवासी सुख-चैन से जीवन-यापन करने लगे ।]

न पूरब और न अष्टमी

किसी गाँव में चार युवक थे। वे चोरियाँ भी करते थे। उन्होंने एक गरीब किसान की बकरी चुरायी और गाँव के बाहर तालाब के किनारे ले जाकर एक बरगद के पेड़ के नीचे उन्होंने उसे मार डाला। वहीं उसको पकाकर खा भी लिया।

यह समाचार मिलते ही किसान ने सोचा कि इस गाँव में उन गुण्डों के कारण इसका ठीक न्याय नहीं होगा। वह सीधे राजधानी गया और राजा के पास ही उसने न्याय की माँग की।

राजा ने चारों युवकों को बन्दी बनवाकर बुलवा लिया और सुनवाई शुरू हुई। चारों में से रामू नामक चोर हिम्मत करके बोला, "महाराज, इस गरीब किसान के पास कोई बकरी थी ही नहीं तो उसको चुराने का सवाल ही नहीं उठता !"

इसपर किसान क्रोध में बोला, "अरे रामू, तालाब के किनारे बरगद के नीचे तुम लोगों ने जिस बकरी को मारकर खा डाला, वह बकरी किसकी थी ?"

इस बार उन चारों में से और एक बोला, "महाराज, हमारे गाँव में कोई तालाब ही नहीं, और बरगद तो है ही नहीं।"

"यह तो सरासर अन्याय है महाराज। तालाब तो वहाँ है ही। तालाब की पूर्वी दिशा में अष्टमी के दिन इन लोगों ने मेरी बकरी मारकर खायी है।" किसान ने कहा।

इसपर एक और चोर ने कहा, "महाराज, हमारे गाँव के लिये पूर्व दिशा नहीं है। अष्टमी तिथि तो हमारे गाँव में आयी ही नहीं। ऐसी हालत में अष्टमी के दिन बकरी काटकर खाना वगैरह कैसा? यह सब सफ़ेद झूठ है।"

इसपर सब लोग और राजा भी असली बात समझ गये। उन्होंने गरीब किसान को हर्ज़ाना दिलवाकर बिदा किया और उन चोरों को कड़ी सज़ा दी।

ज्योतिषी

फारस देश में एक ग़रीब आदमी रहता था। नगर की गलियों में फुटकर चीज़ें बेचकर वह अपना गुज़ारा करता था।

एक दिन उस ग़रीब की पत्नी नहाने के लिये हमामखाने में गयी। उसी वक्त एक और औरत वहाँ आयी और उसने वहाँ के रखवाले से कहा कि, वह तत्काल नहाना चाहती है, उसके लिये तुरन्त वह स्नानागार खाली करवा दें। रखवाले ने उस आज्ञा का पालन कर बाकी सभी स्त्रियों को बाहर निकलने को कहा।

आदेश सुनकर उस ग़रीब की पत्नी बहुत गुस्सा हुई और उस ने व्यंग्य भरे स्वर में पूछा—"यह कौन महारानी है, जिसके लिये हम सबको तुमने बाहर निकाला?"

"जानती नहीं यह कौन है? यह तो राजा के प्रधान ज्योतिषी की पत्नी है।" रखवाले ने जवाब दिया।

गरीब की पत्नी इसपर बहुत खीझकर घर लौटी और अपने पति पर गुस्सा उतारते हुये बोली, "तुम तो किसी लायक़ नहीं हो। कम से कम एक ज्योतिषी ही बन जाते; लोग मेरी इज़्ज़त करते।"

"मैं जन्मकुंडलियाँ नहीं बना सकता। इन नक्षत्रों का हिसाब नहीं जानता। ज्योतिषी बनना मेरे बस की बात नहीं है।" गरीब ने कोरा जवाब दिया।

"यह सब मैं कुछ नहीं जानती। यदि तुम ज्योतिषी नहीं बनोगे तो समझो अभी हमारी शादी टूट गयी। मैं तलाक लेकर पीहर चली जाऊँगी।" पत्नी ने धमकी दी।

गरीब आदमी बेचारा लाचार होकर हाथ में पंचांग व पाँसे लेकर स्नानागार के बाहर ज्योतिष बताने के लिये बैठ गया।

उस समय हमामखाने में राजकुमारी स्नान कर

फारस की लोक कथा

रही थी। स्नान करने के पहले उसने अपनी अँगूठी उतारकर दासी के हाथ में थमाते हुए कहा, "इसे सुरक्षित रखो। नहाने के बाद मैं तुमसे माँग लूँगी।"

दासी की समझ में न आया कि वह अँगूठी कहाँ रखी जाए। तभी उसे वहाँ की दीवार में एक छेद दिखाई दिया। तभी दासी ने उस छेद में अँगूठी रखी और निशान के लिये ऊपर से अपने कुछ बाल उखाड़कर घुसेड़ दिये।

कुछ देर बाद वह स्नान समाप्त कर बाहर आयी। और उसने दासी से अँगूठी की माँग की। पर अब दासी को याद नहीं आ रहा था कि अँगूठी उसने कहाँ रखी।

उसको घबड़ायी देख राजकुमारी उसपर बरस पड़ी—"तुम अगर इसी वक्त अँगूठी हाज़िर न करो तो आज मैं तुम्हारी जान ही लेकर रहूँगी।" यह कहते हुए वह उसको मारने के लिये झपटी।

दासी डरकर स्नानागार के बाहर दौड़ी। वहाँ उसे ज्योतिषी दिखाई दिया।

"महाशय, बताओ तो सही, राजकुमारी की अँगूठी कहाँ है; वरना आज मेरी खैर नहीं।" दासी ने गरीब आदमी की प्रार्थना की।

अब उस बेचारे की समझ में न आया कि क्या किया जाए। उसने दासी की ओर देखा, पंचांग उलट-पलट कर देखा, पाँसे फेंक कर उनको परखने लगा।

इतने में दासी ने अपने सिरपर साडी का जो आँचल ढँक लिया था, उसमें उसे एक छेद दिखाई दिया। छेद में से कुछ बाल बाहर झाँक रहे थे। ज्योतिषी का स्वांग रचते हुए उसे देखते हुए वह बड़बड़ाने लगा—"देखो जी, मुझे एक छेद दिखाई दे रहा है और उसमें से बाल झाँक रहे हैं।" ज्योतिषी आगे कुछ कहे, इससे पहले ही दासी को अँगूठी वाली जगह याद आयी। वह दौड़ी दौड़ी अंदर गयी, अँगूठी निकालकर राजकुमारी के हाथ में रखते हुए उसने बताया कि बाहर बैठ हुये ज्योतिषी ने आज उसकी इज़्ज़त बचायी।

राजकुमारी दासी की बातों से अचरज में आयी और महल में लौटने पर अपने पिता को भी सारी बातें कह सुनायीं।

राजा ने नये ज्योतिषी को बुलवाया, उसने

सम्मान में उसे शाल उढ़ाकर अपने दरबार में नियुक्त किया ।

मगर शीघ्र ही ज्योतिषी के सामने कड़ी परीक्षा उपस्थित हुई । चोरोंने राजमहल के ख़ज़ाने से अनेक अमूल्य चीज़ों की चोरी की। चोरों का पता बताने के लिये ज्योतिषी को आदेश दिया गया ।

अब ज्योतिषी का दिमाग चकराने लगा । लेकिन बचने का उपाय सोचने के लिये उसने चालीस दिन की मोहलत माँगी । अपनी हानि को देखते हुए राजाने भी यह मोहलत दी ।

ज्योतिषी ने घर लौटकर पत्नी से कहा, "अब लो, बड़े आग्रह से मुझे ज्योतिषी बनाया न? भुगतो उसका फल! राजा के ख़ज़ाने में चोरी हो गयी है । चोरों का पता लगाने के लिये राजा से मैंने चालीस दिन की अवधि माँग ली है । और कोई चारा नहीं है ।

चालीस दिनों का हिसाब रखने के लिये ज्योतिषी की पत्नी ने चालीस खजूर गिनकर एक डब्बे में रखे और समझाया—"सुनो, घबराओ नहीं । मैं हर दिन शाम को तुम को एक खजूर खाने को दूँगी । जिस दिन सारा डब्बा खाली हो जाएगा, उसी रात को हम यहाँ से भाग जाएँगे ।"

राजा का ख़ज़ाना लूटनेवाले दल में ठीक चालीस चोर थे । उनको पता चला कि उन्हें पकड़वाने के लिये राजाने एक अच्छे ज्योतिषी को नियुक्त किया है । इसलिये उनके मुखिया ने दल के एक चोर को उसी शाम ज्योतिषी के घर भेजकर वहाँ का वार्तालाप सुनने के लिये भेज दिया ।

चोर ज्योतिषी के घर की ओट में खड़ा होकर
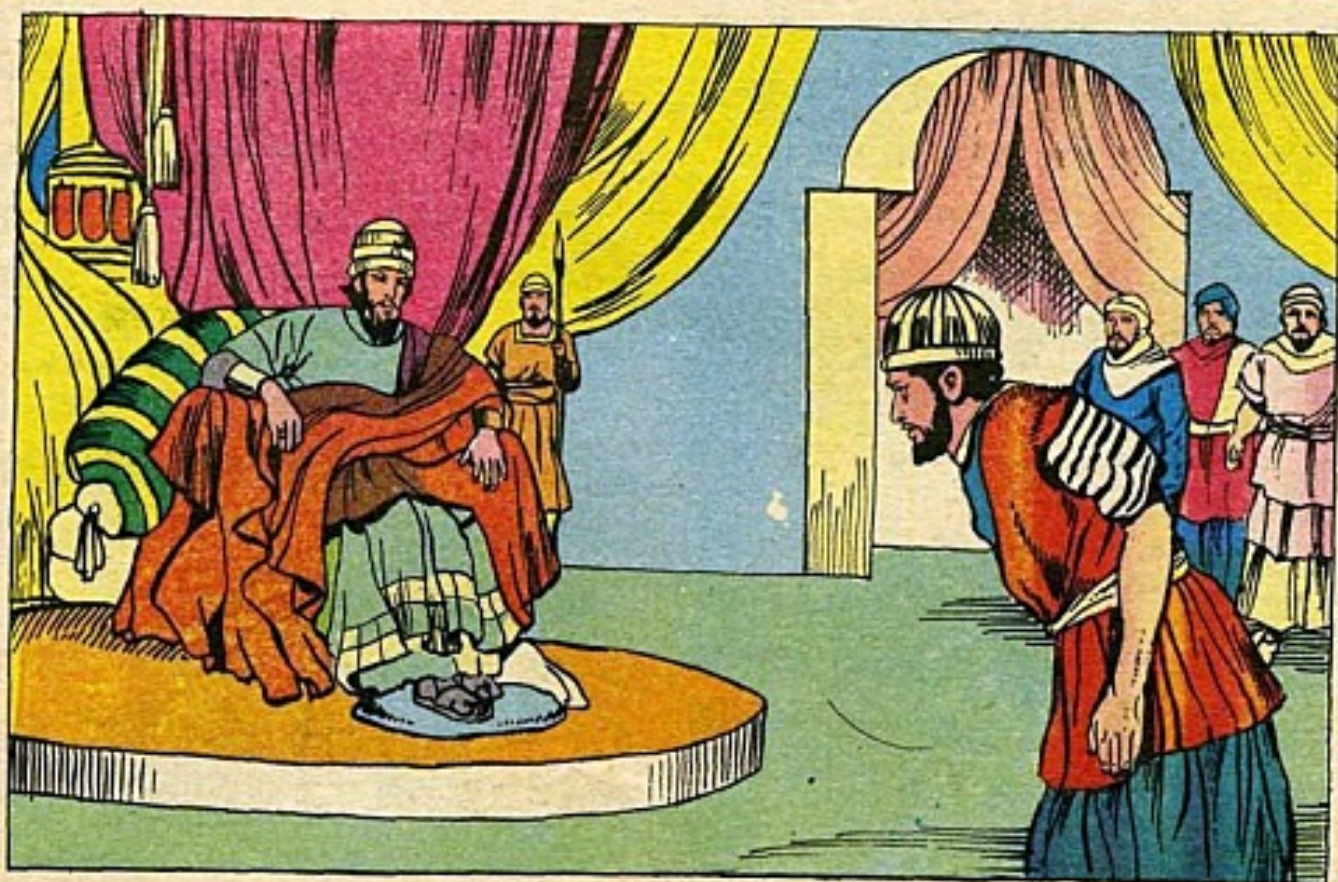
भीतर का वार्तालाप सुनने लगा। ज्योतिषी की पत्नी उसी समय खजूर का डब्बा ले आयी और उसमें से एक पति के हाथ पर थामते हुअे बोली, "यह रहा पहला, अब उनचालीस बच गये।"

यह बात सुनकर चोर घबरा गया और अपने नायक के पास आकर बोला, "ज्योतिषी ने ज़रूर हमको जान लिया है। मैं घर की ओट में खड़ा था तब उसने कहा, "यह पहला, अब उनचालीस बच गये।"

पर नायक ने उसकी बात पर विश्वास नहीं किया। दूसरे दिन संध्या के समय उसने दूसरे चोर को वहाँ भेज दिया। वह भी छिपकर वार्तालाप सुनने लगा तब उसने सुना, "दो, अब रहे अड़तीस।"

इस प्रकार चोरों का मुखिया रोज़ एक एक चोर को भेजता रहा और रोज़ चोरों ने ज्योतिषी का हिसाब सुना। अब उनके मनमें कोई संदेह न रहा। सब ने यही सोचा कि ज्योतिषी को उनका पता लग ही गया है।

चालीसवें दिन स्वयं सरदार वहाँ जाकर ताक में बैठा रहा। घर के भीतर ज्योतिषी को आख़िरी खजूर देते हुए उसकी पत्नी ने कहा, "यही अंतिम है, देखते हो न?, यह बाकी सबसे बड़ा है।"

अब क्या था! सरदार पसीने से तरबतर हो गया, उस के हाथ-पैर ठण्डे पड़ने लगे। वह झट घर के अन्दर घुसा और ज्योतिषी के पैरों पर लोटकर कहने लगा, "महानुभाव, आप हमें राजा के हाथ नहीं सौंप दीजिए। चोरी का सारा माल हम लाकर आप को सौंप देंगे। राजा हमारी गर्दनें काट देगा।"

"ठीक है। ऐसा ही करो। आपका रहस्य मैं खुलने नहीं दूँगा।" ज्योतिषी ने दृढता से कहा।

उसी रात लूटा हुआ ख़ज़ाना ज्योतिषी के हाथ सौंप दिया गया और ऊपर से चोरों ने ज्योतिषी को भी काफ़ी धन दिया।

ज्योतिषी ने खुशी खुशी दूसरे दिन सबेरे ही सारा माल राजा के हाथ सौंप दिया। ज्योतिषी की सामर्थ्य पर खुश होकर राजाने भी उसका बड़े समारोह के साथ सम्मान किया।

इधर ज्यों ज्यों राजा ज्योतिषी की प्रशंसा करता गया, त्यों त्यों उसकी घबराहट बढ़ती गयी। आखिर ऐसे कितने दिन चल सकता है? इस

ज्योतिषी के स्वांग के शिकंजे से छुटकारा पाना चाहिये। नहीं तो कभी न कभी पोल खुल ही जायेगी और वही दिन अपने जीवन का आख़िरी दिन होगा। आज तक भाग्यदेवी ने साथ दिया, मगर भाग्यदेवी भी बड़ी चंचल है—इन विचारों से ज्योतिषी की नीन्द भी हराम होने लगी।

एक दिन यही विचार करते करते ज्योतिषी स्नान कर रहा था और अचानक उसके दिमाग से एक अफलातून सूझ निकली।—अगर मैं पागल होने का स्वांग करूँ तो राजा मुझे दरबार से हटा देंगे, अपनी बला टल जायेगी।

यह विचार आते ही अपने गीले कपड़ों के साथ ज्योतिषी राजमहल की ओर दौड़ पड़ा। वह सीधे राजा के मंत्रणागृह में पहुँचा, जहाँ राजा और मंत्रियों के साथ विमर्श कर रहा था। उसने राजा का हाथ पकड़कर उसको आसन से खींचा और महल के बाहर उसे घसीटना चाहा।

इतने में मंत्रणाघर का एक शहतीर टूटकर सीधे वहाँ गिरा जहाँ राजा आसन पर बैठा हुआ था। आसन टूटकर चकनाचूर हो गया।

राजा पहले तो अपने दरबारी ज्योतिषी पर बहुत गुस्सा हुआ था, मगर इस दृश्य को देखकर वह चकित रह गया। ज्योतिषी से उसने कहा, "ओह, आप तो असाधारण ज्योतिषी हैं, त्रिकालवेत्ता हैं। मेरी होनेवाली हानि भाँपकर आप आधे स्नान में से उठकर मेरे प्राण बचाने के लिये दौड़े चले आये! किस प्रकार मैं आपका ऋण चुका दूँ ?"

वहाँ उपस्थित सभी मंत्री भी ज्योतिषी के पैरों पर गिर पड़े।

ज्योतिषी का भाग्य प्रबल था। वह जब-जब मुसीबत में फंस जाता, तब तब वह घबराकर जो चेष्टाएँ करता वे चेष्टाएँ उसके अनुकुल बनती गयीं। राजा ने सोचा कि यह एक महान ज्योतिषी है, त्रिकालवेत्ता है। भूत, भविष्य एवं वर्तमान का इसे असाधारण ज्ञान प्राप्त है। ऐसे लोग विरले ही होते हैं। वरना एक, दो नहीं, हरबार इस का ज्योतिष सच्चा निकला। महान से महान ज्योतिषियों के निर्णय भी कभी-कभी गलत साबित होते हैं। और संदर्भों की बात तो अलग है। इसने मेरी जान ही बचाई है। ऐसे प्राणदाता का जो भी सम्मान किया जाए, थोडा ही होगा। इसके उपकार का मूल्य चुकाया नहीं जा सकता है। इसलिए इस ज्योतिषी का ऐसा भव्य सम्मान करना चाहिए, जो आज तक किसी को भी प्राप्त न हुआ। आखिर मैं अपना सारा राज्य भी सौंप दूँ तो इसके उपकार के लिए कम ही होगा।

इसके अलावा भविष्य में इसके द्वारा मेरा बड़ा उपकार हो सकता है। राज्य की भलाई हो सकती है। अतः इसको प्रसन्न रखने में ही मेरी तथा राज्य की भलाई है। अब विलम्ब नहीं करना चाहिए। ये ही सब विचार करके राजा ने अपने मन में निश्चय कर लिया कि पुराने ज्योतिषी को राज्य ज्योतिषी के पद पर बनाये रखेंगे तो शायद यह नाराज़ होकर यहाँ से चला जाएगा। इसको राज्य का प्रधान ज्योतिषी बनाऊँगा। यह विचार कर राजाने ज्योतिषी का अपूर्व सम्मान किया, असंख्य उपहार देकर पुराने प्रधान-ज्योतिषी को हटाकर इस ज्योतिषी की नियुक्ति उस स्थान पर की।

दूसरे दिन ज्योतिषी की पत्नी नहाने के लिये हमामख़ाने गयी। उस समय पुराने प्रधान-ज्योतिषी की पत्नी वहाँ स्नान कर रही थी। नये प्रधान ज्योतिषी की पत्नी ने रखवाले को आदेश दिया, "उस औरत को तुरन्त बाहर निकालो। मुझे अभी नहाना है।"

रखवाले ने झट कहा, "जो आज्ञा, अभी बाहर भिजवा देता हूँ।"

थोड़ी ही देर में ज्योतिषिन मटकती हुई खाली स्नानागार में दाखिल हुई।

प्रकृति के आश्चर्य

ज़हर फेंकनेवाला साँप

संकट में फँसने पर विषैला साँप अपने मुँह से दो विष-ज्वालाओं को फेंकता है। जो लोग उसको सताते हैं उनकी आँखों की ओर वह अपनी दाढ़ों से विष-ज्वालाएँ फेंक देता है। ये ज्वालाएँ लगभग ८ फुट लम्बी होती हैं।

खुदाई में कुशल !

युरप और एशिया की मिश्रम जाति का जंगली चूहा संसार के समस्त जानवरों से अधिक तेज़ गति से पृथ्वी में सुरंग खोद सकता है। यह बीस मिनटों में अपने शरीर के वज़न से पचास गुना बोझवाली मिट्टी को खोद कर ऊपर फेंक सकता है।

मनोरंजक एवं ज्ञानवर्द्धक उत्कृष्ट मासिक पत्र

* चन्दामामा हमारे पुराण व साहित्य के श्रेष्ठ रत्नों को क्रमबद्ध रूप में प्रदान करता है ।
* व्यापक दृष्टिकोण को लेकर विश्व साहित्य की अद्भुत काव्य कथाओं को सरल भाषा में प्रस्तुत करता है ।
* मृदुहास्य, ज्ञानवर्द्धक तथा मनोरंजक सुन्दर कहानियों द्वारा पाठकों को आकृष्ट करता है ।
* हमारी पुराण गाथाओं को प्रामाणिक रूप में परिचय करता है ।
* हास्यपूर्ण प्रसंगों तथा व्यावहारिक ज्ञान प्रदान करने वाले शीर्षकों के साथ पाठकों का उत्साह वर्द्धन करता है ।
* चन्दामामा केवल आपके जीवन में ही नहीं बल्कि आपके बन्धु एवं मित्रों के जीवन में भी रचनात्मक पात्र का व्यवहार करता है । इसलिए आप अपने घनिष्ट मित्रों को चन्दामामा भेंट कीजिए ! उपहार में दीजिए !

बच्चों के लिए प्रस्तुत चन्दामामा, पाठकों में नवयौवन का उत्साह एवं आनन्द प्रदान करता है ।

तेरह भाषाओं में प्रकाशित चन्दामामा का साप किसी भी भाषा का ग्राहक बन सकते हैं !

तेलुगु, तमिल, हिन्दी, अंग्रेज़ी, असामी, बंगाली, गुजराती, कन्नड, मलयालम, मराठी, उडिया, पंजाबी और संस्कृत ।

वार्षिक चन्दा: रु. ३०-००

आप किस भाषा का चन्दामामा चाहते हैं, इसका उल्लेख करते हुए निम्न लिखित पते पर अपना चन्दा भेजिए:

डाल्टन एजेन्सीस

चन्दामामा बिल्डिंग्स,

वडपलनी, मद्रास-६०० ०२६.

फोटो-परिचयोक्ति-प्रतियोगिता :: पुरस्कार ५०)

पुरस्कृत परिचयोक्तियां अप्रैल १९८८ के अंक में प्रकाशित की जायेंगी।

P. V. Subramanyam

S. G. Seshagiri

★ उपर्युक्त फोटो की सही परिचयोक्तियाँ एक शब्द या छोटे वाक्य में हों। ★ फरवरी १० तक परिचयोक्तियां प्राप्त होनी चाहिए। ★ अत्युत्तम परिचयोक्ति को (दोनों परिचयोक्तियों को मिलाकर) ५० रु. का पुरस्कार दिया जाएगा। ★ दोनों परिचयोक्तियाँ केवल कार्ड पर लिखकर निम्न पते पर भेजें: चन्दामामा फोटो-परिचयोक्ति-प्रतियोगिता, मद्रास-२६

दिसम्बर के फोटो - परिणाम

प्रथम फोटो : पहले आहार!

द्वितीय फोटो : फिर दुलार!!

प्रेषक : राजलक्ष्मी हौसिला प्रसाद पांडेय, के. पी. फ्लोअर मिल, अम्बरनाथ, जि. थाना (महा.)

चन्दामामा

भारत में वार्षिक चन्दा : रु. ३०-००

चन्दा भेजने का पता :

डॉल्टन एजेन्सीस, चन्दामामा बिल्डिंग्स, वडपलनी, मद्रास - ६०० ०२६

अन्य देशों के चन्दे सम्बन्धी विवरण के लिए निम्न पते पर लिखिये :

चन्दामामा पब्लिकेशन्स, चन्दामामा बिल्डिंग्स, वडपलनी, मद्रास -६०० ०२६

Printed by B.V. REDDI at Prasad Process Private Ltd., 188 N.S.K. Salai, Madras 600 026 (India) and Published by B. VISHWANATHA REDDI on behalf of CHANDAMAMA PUBLICATIONS, Chandamama Buildings, Vadapalani, Madras 600 026 (India). Controlling Editor: NAGI REDDI.

CHANDAMAMA

खरगोशनी बच्चे ढूंढे, आओ उसकी मदद करें